

सत्साहित्य प्रकाशन

सुभाषित-सप्तशती

—वैदिक, संस्कृत तथा पालि-वाङ्मय से पठन और मनन
करने योग्य प्रेरणाप्रद सुभाषितों का संग्रह—

संकलनकर्ता तथा सम्पादक

भगलदेव शास्त्री



मूद्रिका

काका सा० कालेलकर

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक

मातृगुड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंत्रालय

नई दिल्ली

पहली बार १९६०

मूल्य

अठ्ठाई रुपये

मुद्रक
शान्तीलाल अम
धीरानन्द प्रस
दिल्ली

समन्वयात्मक और प्रगतिशील
भारतीय संस्कृति के निर्माण
में तत्पर राष्ट्र-प्रेमियो
की सेवा में

प्रकाशकीय

उत्तम विचारों के पठन-पाठन और स्वाध्याय से प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास में बड़ी सहायता मिलती है। उस पता चलता है कि जीवन का उद्देश्य क्या है और किस रास्ते पर चलने से उसे स्थायी शान्ति और सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है।

संसार के सभी उन्नत देशों के साहित्य में अच्छे विचार मिलते हैं। हमारा भारतीय साहित्य बिनापकर प्राचीन साहित्य तो विचार-रत्नों की खान है। वहीं संस्कृत और पालि बादमय इस दृष्टि से अद्वितीय है।

सर्वविचारों से हर कोई लाभ उठाना चाहता है लेकिन आज के युग में शायद ही कोई ऐसा सीमाप्यवानी व्यक्ति होगा जिसके पास उस धारे साहित्य का पारायण करने का अवकाश और क्षमता हो।

विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में प्राचीन बादमय के पुनः हुए सुमापितों का संग्रह करके एक बहुत ही संकोचयोगी कार्य किया है। ऐसक का अध्ययन बढ़ा गहन और व्यापक है और उसका अधिक-से-अधिक लाभ उन्होंने पाठकों को देने का प्रयत्न किया है। सागर में सागर भर दिया है।

हमें विश्वास है कि अनमोल विचार-मणियों से जगमगाती यह पुस्तक पाठकों के लिए बड़ी ही हितकारी सिद्ध होगी और सभी वर्गों के पाठकों इसके पढ़ने और मनन से लाभ उठावेंगे।

—मन्त्री

संस्कृत संस्कृति की भांकी

प्राचीन काल से हमारी जाति सुभाषितों की कदर करती आई है। क्योंकि एक-एक सुभाषित या तो जीवन व अनुभव का एकांगी या गहरा निषेध होता है या प्रेरणादायी—धृष्टा का चंद घुने हुए शब्दों में टकसाली रूप देता है। लोक-व्याख्या में जिक्र आता है कि एक-एक अच्छे सुभाषित के लिए रसिक राजा लक्ष-लक्ष मुद्रा प्रदान करते थे।

सुभाषितों के लिए राजमान्यता प्राप्त करना एक चीज थी लोकमान्यता पाना दूसरी ही बात थी। राजमान्यता पाने पर कवि का दारिद्र्य दूर हो सकता था। लेकिन लोकमान्यता पाने पर ही कवि अमर होता था। शायद कवि या कवि का नाम अमर न भी हो कवि की कृति तो अमर हो ही जाती थी। संस्कृतसाहित्य में ऐसे हजारों श्लोक हैं या सूक्तियाँ हैं, जिनके कर्ता का नामोनिशान नहीं रहा है। समाजहृदय की यह संपत्ति है। और ऐसी सूक्तियाँ भी उस-उस समाज की संस्कृति का स्वरूप व्यक्त करती हैं। ऐसी समाजमान्य सूक्तियों का और कविता को म अर्पण कर देता है। 'गुमनाम' कहना मुझे पसंद नहीं है।

हमारे पास संस्कृत के जितने सुभाषित-संग्रह हैं वे सब बाध्यरमियों के द्वारा इकट्ठा किये गए हैं। उनमें शुरु में देवताओं की स्तुति या प्रशंसा होगी। निम्न-निम्न कवियों की और सम्राटों की प्रशंसा होगी। बाद में पद्मस्तुति का वर्णन होगा। अन्यायितयाँ तो सुभाषित-संग्रहों का मुख्य भाग। हमारे संस्कृत कवि ऐसी अन्यायितयाँ में अपना सारा जातुय उकेर देते हैं। गृंगार करुण आदि भव रस के समूह भी सुभाषित-संग्रहों में पाये जाते हैं। स्त्रियों के मस्त शिखर-वर्णन तो होना ही चाहिए।

राज-व्यवहार और लोक-व्यवहार की बातें इतनी अच्छी होनी हैं कि यही हिस्सा लोग ज्यादातर बँट कर लेते हैं। प्रहेलिका अपह्नसि भादि विनयवाच्य को भी उसमें स्थान होता ही है।

इन्हें हर अमिषि के लोका के लिए ऐसे संग्रहों में कुछ न कुछ स्थान देना मिल ही जाता है।

लेकिन आज हम ऐसे संग्रह चाहते हैं, जिनमें हमारी संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रहे। जीवनानुभव जिनमें प्रयुक्त है या उन्नत जीवन के लिए जिनमें प्रेरणा मिलती है ऐसे सुभाषित अगर इकट्ठा किये जाय तो शिक्षा क्रम में उनका उपयोग हो सकता है। सारी जाति को विविध संस्कृति का अध्ययन करने के लिए ऐसे संग्रहों का उपयोग हो सकता है। और समाज के उनका उपयोग करने में वाय्यापार को उन्नत रूप मिल सकता है।

शास्त्रियों के पीछे क्षत्रिय-मुनियों के धर्मानुभव का प्रभाव होता है। क्षत्रियों के लिए जातीय हृदय की मान्यता होती है।

अतएव और उन्नत सुभाषितों के संग्रह की माचना मैंने समय-समय पर की है। लेकिन उस माचना का स्वीकार तो पंडितवर मुन्शी के पास ही हो गया। जब-जब श्री मंगलदेव शास्त्री से मिला हूँ, तो वे मेरे लक्ष्य के बारे में ही हैं। उन्नत मनुष्य होते हुए भी शरीर से वे आपाध ग्रस्त रहते हैं। वेदी का महत्त्व अध्ययन करते भी उनमें उन्नत भाव नहीं है। और परमोत्परायण वेदान्तविद्या का अनुशीलन करते भी वे उन्नत भाव नहीं रखते। उनका भाषावाद क्षीण हुआ नहीं है।

धारण क्यों न कर ? शास्त्रीजी का कल्पना पसंद आई। मैं उन्हें कहा कि ऐसे संग्रह में आपके रचे हुए आधुनिक ढंग और आधुनिक विचार के श्लोक भी जान चाहिए, ताकि हमारा संग्रह अच्छे से कहा जा सके।

शास्त्रीजी ने मयासमय यह सुभाषित-सप्तशती बना कर दे दी। इसमें वेद, ब्राह्मण उपनिषद् के वचन भी हैं। श्रीर रामायण महाभारत भागवत और योगवासिष्ठ के श्लोक भी हैं। धम्मपद आदि बौद्ध-जन गाथाएँ भी हैं और कालिदास मास भारवि हर्ष दशो आदि महाकविता की सुभग-ललित कृतियाँ भी हैं। नीति-विराग्य-सतक ता वे छोड़ ही कैसे सकते थे ? और पञ्चतन्त्र हितोपदेश को ता यहा स्थान मिलना ही चाहिए। आखिरकार शास्त्रीजी ने अपन ग्रन्थ रश्मिमाला तथा अमृतमयन से श्रीर कई अनिविष्ट कवियों तथा अन्य विवेचक विद्वानों के बहुमूल्य उपयोगी तथा सदर सुभाषित भी दिये हैं।

इस तरह हमारी सारी पूरी आय-विरासत में से चुनकर यह मनोहर संग्रह तयार किया है। बहुत से वचन तो हमारे आदरणीय पुरखों के हैं। चुनने की दृष्टि और अभिरुचि स्वयं शास्त्रीजी की है। मैं स्वयं चुनने बैठता तो शायद संग्रह दूसरे ढंग का होता। लेकिन न जाने मरा संग्रह बनाते बित्तन साल बीत जाते और भाषा के अल्पज्ञान के कारण अर्मस्य अञ्छ-अञ्छ वचन रह भी जाते।

अगर एक ही उद्देश्य मन में रखकर सी रसिक विद्वान् अपना-अपना संग्रह तयार करते तो हरेण संग्रह अपन ढंग का अनोखा बन जाता। तो भी ऐसे सौ अलग-अलग संग्रहा में जो सुभाषित समान रूप से पाये जाते ऐसे अनेक सुभाषित इस संग्रह में ही हैं।

हिन्दी-अनुवाद में शास्त्रीजी ने केवल शब्दाव देने का आग्रह नहीं रखा है। केवल भाव ही रजु किया है। और कहीं-कहीं ता चंद संस्कृत-शब्दा का अपना ही विविष्ट अर्थ दिया है। ऐसे विविष्ट शब्दों के कारण सुभाषित का रहस्य अनोखे ढंग में प्रगट होता है।

श्री मण्डदेव शास्त्रीजी ने अपन अध्ययन मनन-चिंतन के फल-स्वरूप यह सुभाषित-सप्तशती तयार की है। संस्कृत-प्रमियों के लिए (मरें ब्यास स संस्कृत में यदि संस्कृत पाली प्राकृत आदि सब शब्दों का ही जाती

हैं।) और सस्कृति-उपासकों के लिए यह एक अच्छी मनन-योग्य प्रसन्न संजीर भेन है।

मैं सा उनके प्रति हस्तज्ञ हूँ ही।

मई दिस्सी

राम भवनी

५४६० ।

काका कालेतर

पुनः—

‘सस्ता साहित्य मंडल’ के प्रति मरा इतना घनिष्ठ आत्मीय भाव है कि प्रकाशक के तौर पर उनका अभिनंदन करते मैं अपना ही अभिनन्दन कहूँगा ।

का० का०

प्रस्तावना

सात' की संख्या के साथ भारतीय विचार-धारा का चिरन्तन काल से गहरा सम्बन्ध रहा है। वदिक वाङ्मय से लेकर बराबर यह सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वदिक साहित्यों में ही 'सप्त ऋषयः' 'सप्त अश्वः' 'सप्त समिधः' 'सप्त परिषयः' 'सप्तहोता' 'सप्त सिंभवः' सप्त छन्दांसि 'सप्त प्राणा' 'सप्त धामानि' इत्यादि प्रसंगों में 'सप्त' का प्रयोग आया है। पिछले साहित्यों में भी 'सप्त-रश्मि' (=सूर्य) 'सप्तांगु' (=अग्नि) 'सप्ताह' 'सात बार' 'सप्त धातुएँ' 'सात द्वीप' 'सप्त-भूमिक' प्रासाद सप्तपदी', सात स्वर' इत्यादि प्रसंगों में 'सप्त' या सात की संख्या आती है।

इसका मौलिक कारण क्या है? क्या सृष्टि की रचना में ही इसका मौलिक कारण निहित है? विज्ञान के लिए यह एक विचारणीय समस्या है।

कदाचित् कुछ ऐसे ही कारणों में साहित्यिक रचनाओं के साथ भी उक्त संख्या का सम्बन्ध चिरकाल से हो पाया जाता है। उदाहरणार्थ संस्कृत प्राकृत और हिन्दी का सप्तशती-साहित्य प्रसिद्ध है। हास-कृत सप्तसई (=सप्तशती) गोबधन-कृत आर्या-सप्तशती विश्वेश्वर-कृत आर्या-सप्तशती विहारी-सप्तसई सुलसी-सप्तसई, वृन्द-सप्तसई आदि रचनाएँ उक्त प्रवृत्ति को ही प्रमाणित करती हैं। दुर्गा-सप्तशती का सा समस्त भारत में एक धर्म-पुस्तक के रूप में अनाथा स्थान चिरकाल से ही रहा है और अब भी है। हिन्दुओं की अत्यन्त मान्य पुस्तक भगवद्-गोता भी वास्तव में एक सप्तशती ही है।

इसी मान्य परम्परा का ध्यान में रखकर प्रस्तुत पुस्तक के नाम और स्वल्प का निर्धारण किया गया है।

सुभाषित-ग्रंथों की परम्परा भारतवर्ष में महत्ता क्यों मानी आ रही है। वदिक साहित्यों में सम्मिलित सुभाषितों को छाड़कर भी प्राचीन ग्रन्थों में यत्र-तत्र उद्धृत सुभाषित सुभाषित-ग्रंथों का आरंभ करत हैं। यही बात रामायण महाभारत आदि प्राचीन मसूख पानि तथा प्राकृतग्रंथों

के विषय में कही जा सकती है। पञ्चतन्त्र जैसे ग्रन्थों की रचना में सुभाषित संग्रहों का आधार स्पष्ट है। यह तर्क की बात है कि उन अतिप्राचीन संग्रहों में से अब कोई ग्रन्थ-रूप में अवशिष्ट नहीं है। फिर भी लगभग ११ वीं शताब्दी ई० में बन हुए अनेक बड़े-बड़े सुभाषित-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से अतीव्यवधानसमूहस्य सन्निधिरुक्तं सुभाषितमुक्तावली शार्ङ्गधर-पद्धति और बल्लभ-सुभाषितावली मुख्य हैं।

आधुनिक समय में भी सुभाषितरत्नभाण्डागार (वम्बई) तथा Dr Böhrlingk द्वारा संगृहीत Indische Sprüche (जर्मन अनुवाद-सहित) जैसे विभिन्न सुभाषित-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

सुभाषित-संग्रहों का महत्त्व के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। साहित्यिक जगत् में सहस्रों वर्षों के उत्कृष्ट और सुन्दर विचारों का एकत्र संग्रह वास्तव में किसी भी बड़ी-से-बड़ी प्रशंसी या संग्रह में अधिक महत्त्व रखता है। यही तो एक-एक सुभाषित-रत्न भी अमूल्य होता है। 'सुखताम-जातक' में ठीक ही कहा है कि 'सुभाषित अमय्य हानं'। प्राणों से भी उनका मूल्य अधिक होता है।

इसीलिए प्रत्येक सभ्य देश के साहित्य में सुभाषित-संग्रहों को विशिष्ट स्थान दिया जाता है।

वास्तव में किसी भी सुभाषित-संग्रह का शत्रु साहित्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानव-जीवन की आवश्यकताओं की दृष्टि से भी अतिव्यापक होना चाहिए।

परन्तु इधर भारतवर्ष के इतिहास के मध्यकाल में रचित सुभाषित संग्रहों में जिनका उत्पत्ति हम ऊपर बर चुके हैं, उन अपेक्षित गुण प्रायः नहीं देख जाते। सामान्य रूप से उनकी प्रवृत्तियों का हम इस प्रकार संगृहीत कर सकते हैं—

- १ निदिबल रूप से उनमें सुविस्तृत बहिक साहित्य की उपेक्षा की गई है। इसीलिए उनमें बहिक साहित्य की स्फूर्ति-शक्ति

१. ॥ 'संग्रहाय'.....सुभाषितावली.....सुखीव इत्यादि मनःप्रसन्नं, येनोत्तराग विभक्तं च यति। प्रया विदुषा विदितमस्मात् च कर्म ननु स्वादि तत्तद्वर्गः ॥ (जातकमाता में सुखीव-जातक)

चदात भावनाओं का अमाप है।

२ कौनिक संस्कृत-साहित्य में भी कवियों के पद्य-मय सुभाषितों की ओर ही उनका अधिकतर झुकाव है।

३ उनमें अथ विषयो के साथ-साथ प्रायः सबसे अधिक प्रामुख्य भूङ्गार रस से सज्जित नायक-नायिकाओं का वर्णन तरुणी-व्रज्या समोग-व्रज्या जैसे वर्णनों को ही दिया गया है।

ये बातें कई अंशों में आधुनिक सुभाषित-संग्रहों के विषय में भी ठीक हैं। प्रस्तुत 'सुभाषित-सप्तशती' उपरोक्त बातों की दृष्टि से रचित संग्रहों से नितान्त भिन्न है और उसका वशिष्ठ्य इसी बात में निहित है।

संक्षेप में संगृहीत सुभाषितों के आधार, भाषा और मध्य की दृष्टि से इस ग्रन्थ की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१ पुस्तक के तीन खण्डों में से प्रथम खण्ड के समस्त सुभाषित वदिक वाङ्मय के विभिन्न भागों—मन्त्रभाग ब्राह्मणभाग उपनिषद् भाग और परिशिष्ट—से लिये गए हैं।

२ द्वितीय खण्ड के सुभाषित इतिहास-पुराण स्मृति अथशास्त्र, आयुर्वेद जैसे विविध क्षेत्रों के साथ-साथ जन और बौद्ध मान्य ग्रन्थों से भी लिये गए हैं। संस्कृत के साथ पालि के सुभाषित भी इस खण्ड में सम्मिलित हैं।

३ सुभाषित केवल पद्यों के रूप में न होकर, पद्य-खण्डों और विभिन्न शस्त्री के गद्य के रूप में भी संगृहीत किये गए हैं।

तृतीय खण्ड के सुभाषित मुख्यतः प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से और अन्य ग्रन्थों से भी लिये गए हैं।

४ यह ध्यान रखा गया है कि सुभाषितों की भाषा यथासंभव मंजी हुई सरल सहृदय और अल्पाक्षर हो जिसमें उनका अधिक-से-अधिक प्रचार हो सके और ये बिना प्रयास पण्डित हो जाय। उनमें आह्लादक चमत्कृति हाँ इसका भी यथासंभव ध्यान रखा गया है।

५ संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता आदर्शों और विचारों की दृष्टि से है। यह बराबर ध्यान में रखा गया है कि सुभाषितों के विचार

अनायवृत्ति के न हों नायरता स्वार्थपरता दबबादिता, मूढ्य भोरना मिथ्या-वराग्य मिथ्या-गुंतोप आदि वृत्तिपों का पोषण देनवाले न हों। साथ ही स्त्रण कामुकता दज्ञानवाले या पुरुषार्थ को क्षीण करनेवाले भी न हों।

भावागमन दृष्टि से इस मण्ड-शर्ती का मुख्य अभिप्राय यही है कि इसके द्वारा देश में विद्यमान नवयुवकों में आत्म-विश्वास स्वायत्तम्बन चारित्र्य का उत्तम मानवता का सम्मान जीवन में आधावाद, कृतव्य-गराययत्ता धर्म और तपस्या द्वारा उन्नति की भावना जसी जगत् भावनाओं का सञ्चार हो। साथ ही व्यापक समष्टिधारक असांख्यिक भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा की पृष्ठ-भूमि में यथागमन सततज्ञान के तम से उनके विभिन्न स्वस्वों का और उनके प्रभावों का परिचय भी इस संग्रह का ध्येय है। इससे व्यापक असांख्यिक भारतीय संस्कृति की भावना को अवश्य पुष्टि मिलेगी ऐसी हमारी धारणा है।

आज तक के समस्त सुभाषित-संग्रहों में इस संग्रह की यह सबसे बड़ी सुखी है।

पुस्तक की सामग्री तीन खण्डों और तेरह अध्यायों में विभक्त की गई है।

प्रथम खण्ड में सुभाषित कमश बार अध्यायों में मन्त्र-संहिताओं, काव्यों उपनिषदों और परिशिष्ट रूप में निरुक्त में लिये गए हैं। इस खण्ड के सुभाषितों की संख्या २४० है। अपनी उदात्त जटिक भावनाओं के कारण वास्तव में इस खण्ड का सबसे अधिक महत्त्व है। प्रापाम्यन धुति-मूलक होने से, इस खण्ड का हम धुति-खण्ड भी कह सकते हैं।

द्वितीय खण्ड के सुभाषित भी बार अध्यायों में विभक्त हैं। उनकी संख्या २४१ है। ये त्रयशः १ वात्सीकि रामायण और महाभारत २ धन और बौद्ध ग्रन्थ—ज्ञानार्णव और धम्मपद ३ अर्थशास्त्र चाणक्य सूत्र और मनुस्मृति तथा ४ बरक-मंजिता योगवासिष्ठ और धीमतामस्त में संग्रहित किये गए हैं। धम्म-गव के सुभाषित पालि में पाए संग्रहित में हैं। त्रिषार-पारा और लणी दोनों की दृष्टि से ये ग्रन्थ प्राच्य पदिक पाठ और ब्राह्मणों के मध्यकाक का प्रातिनिध्य करत हैं। प्रापाम्यन स्मृति और पुराण-मूलक होने से इस खण्ड को हम स्मृति-पुराण-खण्ड भी कह सकते हैं।

तृतीय खण्ड के सुभाषित पांच अध्यायों में विभक्त हैं। उनकी संख्या २१९ है। जसा विषय-सूची से विदित होगा वे क्रमशः (१) कालिदासीय काव्य-नाटको, (२) भारवि भाष और श्रीहर्ष के महाकाव्यों (३) शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त के नाट्य-ग्रन्थों तथा दण्डी भाण और राजशेखर की गद्य-रचनाओं (४) कयासरिस्सागर, पञ्चतन्त्र हितोपदेश भीतिशतक, वराह्य-शतक रश्मिमाला और अमृतमन्यन तथा (५) प्रकीर्णक के रूप में अनिर्दिष्ट विभिन्न ग्रन्थों से लिये गए हैं। इस खण्ड का आधार अधिकतर महाकवियों के ग्रन्थ हैं इसलिए इसको हम काव्य-खण्ड भी कह सकते हैं।

इस पुस्तक की तयारी और प्रकाशन का श्रेय श्रेष्ठ काकासाहब कालेसरकर को है। संस्कृत के पूर्व प्रकाशित संस्कृत-ग्रंथ 'प्रबन्ध प्रकाश' में सुभाषितों को देखकर काकासाहब ने इच्छा प्रकट की कि 'उन सुभाषितों का कुछ बढ़ाकर हिन्दी-अनुवाद के साथ स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में निकाला जाय। इतना ही नहीं, उन्होंने अनक उपयोगी सुझाव भी दिये। उन्हींकी प्रेरणा से यह पुस्तक तयार हुई और उन्हींके सुझाव पर 'संस्कृत साहित्य मण्डल' ने पुस्तक का प्रकाशन स्वीकार किया। स्वभावतः हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हैं। अन्त में हमारी यही हार्दिक कामना है कि

सुभाषितानामप्रमाणामिव सप्तशती गुणतमम् ।

कुवती जीवनोत्कर्षं दां ततोऽपि समन्ततः ॥

—यष्ट सुभाषिता को यह सप्तशती मनुष्या के जीवन में उत्तम सती हुई सब ओर बल्याण का बिस्तार करे !

तमसस्तस्मिन् पश्यन्तो नित्यं स्वर्ग्यमुत्तरम् ।

अदनुषोमहि तवग्योतिरसमं यदनामयम् ॥

—उत्कृष्टतर प्रज्ञा को आदर्श रूप में देखते हुए हम सब अज्ञानाय कपरी वतमान अवस्था से क्रमशः ऊपर उठकर, उस उत्तम प्रज्ञा का प्राप्त हों, जो सब प्रकार के अज्ञान से अज्ञान से और अपूणता से रहित है !

वरिष्ठ स्वाध्याय मणिर,
ज्योतिराभम, धाराणसी छावनी

—मङ्गलदायक शास्त्री

(६) काव्यमयी	५७२-५७५	१३८
(७) काव्यमीमांसा	५७६-५८१	१३९

वारहृदी अध्याय

(१) न्या-सरिस्सामर	५८२-५८८	१४०
(२) पञ्चमत्र	५८९-६०८	१४१
(३) हितपत्र	६०९-६१०	१४३
(४) नीतिशतक	६११-६२५	१४४
(५) वराग्यगत	६२६-६३७	१४७
(६) ररिममाला	६३३-६४०	१४९
(७) भमृतमयन	६४१-६४६	१५३

तेहरदी अध्याय

प्रकीर्णक	६४७-७००	१५५
सुभाषित-सूची (अवारादि नम से)		१६७
विषय-निर्देशिका		१७९

मातृभूमि का अभिनन्दन (वैदिक पद्धति में)

सा नो माता भारती भूविभासताम्
हमारी विश्व-प्रसिद्ध मातृभूमि भारत देदीप्यमान हो

१

येयं देवी मधुमा तर्पयन्ती
तिस्रो भूमीदृष्टता द्यौरपस्यात् ।
कामान् बुध्म विप्रकथत्यस्सम्भो,
मेघो भव्या सा सदाऽस्मासु दृष्यात् ॥

स्वर्ग-राज से मानो उतरकर तीना लाफा का निष्प माधुय से
भरनवाली इच्छित कामनाओं को दनवाली तथा दुख-वारिद्र्य (मलदमी)
को हटान वाली देवी स्वर्णपिणी भारत-माता मद्विचारा को माधना में
हमारी सहायक हो ।

२

सर्वे देवा उपनिषदस्य सर्वा,
धर्मग्रन्थाश्चापरे निधयो यस्याः ।
मृत्योर्मर्त्यान्मृतं य इति न्ति न
सा नो माता भारती भूविभासताम् ॥

मनुष्या को मृत्यु में हटान अमृत की प्राप्ति का उपाय करनेवाले
समस्त देव उपनिषद् तथा अन्य (बौद्ध जैन आदि) धर्म-ग्रन्थ त्रिगुण
निधि-स्वरूप हैं वह विश्व-प्रसिद्ध हमारा मातृभूमि भारत देदीप्यमान हैं ।

३

यां प्रच्युतामनु यशां प्रच्यवन्ते,
 जतिच्छन्ते ते भूय जतिच्छमानाम् ।
 यस्या वते प्रसवे यम एजते,
 सानो माता भारती भूविमासताम् ॥

जिमकी अवनति ममार में धर्मावरण की अवनति का कारण होती है जिसकी उत्पत्ति में धर्मावरण की उत्पत्ति निहित है । जिमने धर्म को प्रस्था प्राप्त होती है वह जिसे प्रसिद्ध हमारी मातृ-भूमि भारत दीप्यमान हो ।

४

यां रक्षस्यमिशं प्रतियुष्यमाना,
 देवा ऋषयो मुनयो ह्यप्रमारम् ।
 राजर्षयोऽपि ह्यनघा सायुषर्षाः,
 सानो माता भारती भूविमासताम् ॥

देवगण ऋषि मुनि राजर्षि और पवित्रात्मा मन्त्र-महारमागण सामधानी तथा तत्परता से जिमने ब्रह्माण्ड स्वर्ण की निरन्तर रक्षा करते आये हैं वह पितृ प्रसिद्ध हमारी मातृभूमि भारत दीप्यमान हो ।

५

महान्नोऽस्यां महिमानो निविष्टाः
 देवा मातुं यां दामन्ते न सद्यः ।
 सा नो वन्द्या भ्रातृसा भ्रातृमाता
 माता भूमिः प्रगुरतां शपत्तान् ॥

जिगदी मत्तिमा गहान् है स्वर्ण भी जिमने स्वर्ण का पाग नहीं कर पाठ समुच्चयत सत्र न दीप्यमान यह सर्व-स्वर्ण-काशीय हमारी मातृभूमि विरापी दानों का दामन (निरावृत्त) करनेवाणी है ।

(माहात्म्यम्)

अमिनन्दनमिदं पुष्पं दिव्यमायै समर्पितम् ।

मातृभूमे पठन्निस्वमात्मककल्याणमश्नुते ॥

मातृभूमि भारत के दिव्य भावों में युक्त इस पवित्र अमिनन्दन का नित्य पाठ करने वाला मनुष्य आत्म-कल्याण को प्राप्त होगा ।

ॐ

सन्तो मधुप्रता सान्द्र

पीत्वा दाह्यरसामृतम् ।

श्लोकोत्तर तपाक्षय्य

मान्द्रमुपभुञ्जते ॥१॥

सत्पुरुषों का स्वभाव मधुपान-रसिक श्रमर के समान होता है । ये शास्त्रों के रस-रन्धी अमृत को तमयता के साथ पीकर अक्षय श्लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करते हैं ।

प्रबोधाय विवेकाय

हिताय प्रणमाम्य च ।

सम्पत्तस्वोपदेशाय

सत्तां सूक्तिं प्रवर्तते ॥२॥

सत्पुरुषों की सूक्ति दूसरों के यथाय ज्ञान के लिए, सत्य और अमर्य के विवेक के लिए, साक-कल्याण के लिए अगत् में शान्ति के लिए और वास्तविक तत्त्व के उपदेश के लिए प्रवृत्त दृष्टा करती है ।

सुभाषित-सप्तशती

प्रथम खण्ड

अध्याय १—४

असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्नामृत गमय ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् १।१।२८

मरे आदश देव ।

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलिये,
मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलिये,
मुझे अपूणता (मृत्यु) से पूणता (अमृत) की ओर ले चलिये।

पहला अध्याय

वैदिक धारा का अमृत स्रोत

बहु दिव्य मेधा जिसन ऋषियों द्वारा वैदिक धारा को प्रवाहित किया था जिसन भारतीय संस्कृति के उष-काल में विद्व में व्याप्त उस मौलिक तत्त्व का साक्षात्कार किया था जिसकी दिव्य विभूतियों का वैदिक देवताओं के रूप में मंत्रों में गान किया गया है और जिसन माना प्रकाशमय आनन्दमय लोकों से लाकर मानव-जीवन के लिए दिव्य सवेष्टों की श्रुति-मधुर पवित्र शब्दों में सुनाया था भारतीय संस्कृति के अमृत-स्रोत के रूप में अब भी वैदिक मंत्रों में सुरक्षित है। उस अमृत-स्रोत में अवगाहन निश्चय ही मानव के सतप्त हृदय का दांति दे सकता है। अपनी अद्वितीय उदात्त भावनाओं और अमूल्य जीवन-मार्गों के कारण उसका निश्चय ही सावकालिक और साधनीय महत्त्व है।

उसी दिव्य अमृत-स्रोत का धाराबाहिक निष्पन्न प्रायः वैदिक मंत्रों के शब्दों में ही हम नीचे करना चाहते हैं जिससे उसके जीवन-मार्ग पवित्रताप्राप्त और दान्ति तथा आनन्द का देनवाले प्रभाव का अनुभव पाठक स्वयं कर सकें।

मौलिक प्रश्न

१ कर्त्तव्य क्या है? (ऋग्वेद १.०१.११)
हम किस देव की श्रुति और उपासना करें?

उत्तर

यत्तु चोदया पृथिवी च दृढा येन स्य स्तभितं येन नाशः ।

यो भस्तरिक्षो रजसो विमानः कर्म वैबाय हविषा विधेम ॥

(ऋग्वेद १०।१२।५)

जिम की गति में विशाल गुलाब का पृथिवी का स्थल और माक-मान का अपन-अपन स्वप्न में स्थिर कर रहा है और जो भस्तरिक्ष स्तम्भ में भी व्याप्त हो रही है, उसको छोड़कर हम किस देव की स्तुति और उपासना कर सकते हैं ? अर्थात् हमको उगी महागति-रूपिणी देवता की पूजा करनी चाहिए ।

मूलतत्त्व या स्वरूप

२ स ओतः प्रोत्पद्य विभूः प्रजायुः । (यजुर्वेद ३२।८)

यह मूलतत्त्व या प्रोत्पद्य में आग प्राप्त है और सब प्राणियों में अव्ययीक रूप में कार्य कर रहा है ।

३ न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यत् ।

(यजुर्वेद ३२।३)

उमरा या भवन पैला हुआ है । उसकी प्रतिमा या उपमा नहीं हो सकता ।

गय देयता उगीकी विभूति है

४ एकं सदिप्रा बहुधा वरगय

मि यमं भस्तरिक्षालमाह । (ऋग्वेद १।१६।८६)

एक ही मूलतत्त्व को बिड़ाम अग्नि यम भस्तरिक्षा आदि प्रमत्त नामों से कहते हैं ।

५ शुपर्ण विप्राः कथयो बभोभिरेकं सत्त्वं बहुधा वक्ष्यन्ति ।

(ऋग्वेद १०।११।५५)

एक ही सर्व-व्यापक तत्त्व को विद्वान् भवि शब्दों द्वारा अनेक रूपों में कल्पित कर लेते हैं ।

६ तदेवाग्निस्तवावित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमा ।

तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म सा आप स प्रजापति ॥

(यजु० ३२।१)

उसी मूल तत्त्व को अग्नि आदित्य वायु चन्द्रमा, शुक्ल (= मास्वर) ब्रह्म अप् (= जल) और प्रजापति कहा जाता है । अथवा अग्नि आदि सब उसीकी विभूतियाँ हैं ।

उस परम देव की महिमा

७ महोरस्य प्रणीतय पूर्वोक्त प्रगस्तय ।

नारय क्षीयन्त उन्त्य ॥

(ऋग्वे० ६।४५।३)

परमदेवदासी भगवान् की सीला या चरित्रों की कोई सीमा नहीं है । इस अनन्त विश्व प्रपञ्च के निर्माता के संख्यातीत गुणा का गान कौन कर सकता है ! हमारा कल्याण इसीमें है कि हमका सदा यह विध्वाम रहे कि भगवान् सबके रक्षक हैं । इस सारे विश्व की रचना का एकमात्र उद्देश्य हमारा कल्याण है ।

८ वेदाहुमेत पुरुषं महान्तमावित्यवण तमस परस्तात् ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति मान्यं पन्था विद्यतेऽप्यनाय ॥

(यजु० ३१।१८)

गवत्र आत प्रात वह महान् देवाधिदेव मृष के समान अपने मन्त्रामय स्वर का मन्त्र फैलाय हुए भी हमारे अज्ञानाग्धकार के कारण हमसे छिपा हुआ है । उसका जानकर ही मनुष्य मरु अथवा दुष्ट नाचना का दूर कर सकता है । अमृतत्व भयबा विनाश जीवन की प्राप्ति का बाट हमारा पाग नहीं है ।

आदर्श प्राथना

९ तासवितुर्वरेष्वं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(यजु० ३१३५)

हम सब मवितु-देव के उस प्रसिद्ध वरणीय तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं जा हम सबकी बुद्धियों का प्रज्ञा प्रदान करे ।

१० मेधामहं प्रथमा ब्रह्मण्यतो ब्रह्मजृतामुविष्टताम् ।

प्रपीता ब्रह्मचारिभिर्ब्रह्मनामयसे त्वये ॥

(अथर्व० ६११०८१२)

ऋषियों द्वारा मन्त्रुत, ब्रह्मचारियों से मवित ज्ञान का प्रकाश करने वाली और स्वयं ज्ञानमय उस श्रेष्ठ मेधा-शक्ति का हम आश्रान करते हैं जिससे रामस्म तैबी शक्तियों का सामिष्य और संरक्षण हमकी प्राप्त हो गये ।

११ तन्मे मनः शिवस्तत्त्वमस्तु

(यजु० ३१११)

मन मन के सकल गुण और ब्रह्मणमय हों ।

१२ बिदधानि देव सवितरिक्तानि परा सुभ ॥

यद् भद्र तन्न मा शुभ ॥

(यजु० ३०१३)

हे देव मवित ! समस्त दुगुणों का रमण दूर कीजिय और मा ब्रह्मण भद्र है उग हम प्राप्त कराइये ।

१३ परि माणः कुरुचरिताद् वापस्वा

मा शुचस्ति भज ।

(यजु० ४१२८)

हे प्रकाश-वस्त्र धरित-देव ! मुझे दुष्टों से मा बचाकर गन्धर्वों से दुष्टता से रक्षापत्र कीजिय ।

१४ भद्रं मा भवि वातय मनः

(ऋग्वे० १०१२०१२)

भगवन् ! ऐसी प्रेरणा कीजिये जिससे हमारा मन कल्याण अथवा शुभ मार्ग का ही अनुसरण करे।

१५ भद्रं भद्रं न आमर (श्रुत् ८।१३।२८)

भगवन् ! हमें बराबर कल्याण को प्राप्त कराइये।

१६ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
(यजु० २५।२१)

हे यजनीय देवगण ! हम कामो से शुभ सुनें और आसों से शुभ ही देखें।

१७ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽ-
वस्थासो भयस्यतीत उद्भविः । (यजु० २५।१४)

हमें ऐसे शुभ संकल्प प्राप्त हों जो सर्वथा अविफल हों, जिनको साधारण मनुष्य नहीं समझत और जो हमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जीवन की ओर ले जानवाले हों।

जीवन की दार्शनिक दृष्टि

१८ कुपमेवेह कर्माणि विजीवियच्छत समा ।

एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कम सिध्यते नरे ॥

(यजु० ४०।२)

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य कर्मों का करता हुआ ही पूरा आयु-मयन्त जीवन की अपेक्षा अपने का समझत करने की इच्छा करे। उसका कल्याण इसी में है कर्तव्य कर्म को छाड़कर भागन में नहीं। कम-बगन से अपने का यही उपाय है।

१९ ईशा वास्यमिदं सर्वं यतिः यः अगत्या अगतः ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीया मा गुणं यस्य स्विद्वनम ॥

(यजु० ४०।१)

सार विष्णु में अन्तर्गामी भगवान् व्याप्य हैं। कम करने पर ईश्वर द्वारा

जो भी फल प्राप्त हो उसका तुम उपभोग करो । जो दूसरे को प्राप्त हो उसपर अपना मन मत चलाओ ।

२० सः.....यायातप्यतोऽर्षान् व्यवधान्तावतीग्य-
समाप्त्यः ।

(यजु० ४०।८)

हमारे जीवन में ईश्वर से प्राप्त पदार्थों में सदा ही योग्यता और मीथित्य का आधार होता है ।

२१ अवीना स्याम शरवः क्षतम् । भूयश्च शरवः क्षतात् ।

(यजु० ३६।२४)

हम सौ वर्ष तक और सौ वर्ष में भी अधिक काल तक मरीन हाकर रहें । अर्थात् हम जीवन के महत्त्व को समझें और वीनता के भाव से अपन को दूर रखते हुए सदा उन्नति पथ पर आगे बढ़ते रहें ।

२२ न ऋते भ्रान्तस्य सस्याय देवाः (ऋगु० ४।३३।११)

जो ध्रम नहीं करता उसका साथ देवता मित्रता नहीं करते ।

२३ पावृक्षिन् पापि तमपस्यया विबत् (ऋगु० ५।४४।८)

मनुष्य अपन ध्यय को ध्रम और तप से ही प्राप्त कर सक्ता है ।

२४ अस्ति रत्नमनागसः (ऋगु० ८।६७।७)

निष्पाप मनुष्य के लिए अमूल्य रत्न स्वर्ग उपस्थित हो जाते हैं ।

जीवन का लक्ष्य

२५ उर्व्यं तमसस्पति स्वाः पश्यन्त उत्तरम् ।

देव्यं देवता सूर्यमगम्य ज्योतिरुत्तमम् ॥ (यजु० २०।२१)

अज्ञान-स्फी अन्धकार से उत्तरोत्तर प्रकाश की ओर बढ़ते हुए हम देवताओं में सूर्य के समान, उत्तम ज्योति अर्थात् सर्वोत्कृष्ट अवस्था का प्राप्त करें ।

२६ लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि ।

(ऋग्वे० १।११।९)

भगवन् ! मुझ उस पूर्णता की अवस्था का प्राप्त कराइए, जहाँ ब्रह्म प्रकाश-ही-प्रकाश है, अर्थात् जहाँ अज्ञान-रूपी अन्धकार नाममात्र को भी नहीं ह ।

२७ परतु मृत्युरमृतं न ऐतु (अथर्व० १८।३।६२)

भगवन् ! अपूर्ण जीवन की अवस्था में हम पूर्णता के जीवन का प्राप्त कराइए ।

२८ उवायवा स्वायुषोवस्थाम् (यजु० ४।०८)

हम उत्कृष्ट और शुभ जीवन के लिए उद्योग-शील हों !

२९ प्रतार्षायुः प्रतरं नवीयः (ऋग्वे० १०।५९।१)

भगवन् ! हम नवीन से नवीनतर और उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर जीवन की ओर बढ़ते रहे ।

जीवन-संगीत

३० श्रीवेम शरवः शतम् ।

भूम्येम शरवः शतम् । रोहिम शरवः शतम् ।

पूयेम शरवः शतम् । भवेम शरवः शतम् ।

भूयेम शरवः शतम् । भूयसी शरवः शतात् ॥

(अथर्व० १९।६।७।८)

हम मी और मी से मी अधिक वर्षों तक जीवन-यात्रा करें,
अपन ज्ञान का बराबर बढ़ाते रहें
उत्तरोत्तर उत्कृष्ट उत्पत्ति का प्राप्त करते रहें
पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करते रहें
आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहें
और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा मद्गुणा में
अपनका नृपित करते रहें ।

४२ ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।

(अथर्व० ११।५।१७)

ब्रह्मचर्य के तप से ही राजा अपने राष्ट्र को रक्षा में समर्थ होता है ।

४३ इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभिरत् । (अथर्व० ११।५।१९)

संयत जीवन में रहनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य द्वारा ही अपनी इन्द्रियों का पुष्ट और कल्याणामुक्त बनाने में उन्हें कल्याण की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ होता है ।

ऋत और सत्य की भावना^१

४४ ऋतस्य हि शुभयः सन्ति पूर्वोत्

ऋतस्य धीतिषु जिनानि हस्ति ।

ऋतास्य दल्लोको बधिरा सखं ।

कर्मा वृषान शुभमान आयो ॥

ऋतस्य बृहदा पहणानि सन्ति

पुरुषि चाम्ना वपुवे वपुषि ।

ऋतेन बोधमियणस्त पृक्ष

ऋतेन याव ऋतमा विवेक्षु ॥

(ऋग्० ४।२३।८ ९)

ऋत अनेक प्रकार की सुख-सान्ति का स्रोत है

ऋत की भावना पापों को विनष्ट करती है ।

मनुष्य को उपबोधन और प्रकाश देनेवाली

^१ ब्राह्म जगत् की सारी प्रक्रिया विभिन्न प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही है । उन सारे नियमों में परस्पर विरोध न हाकर एकमनता या एक्य विद्यमान है । इसीको ऋत कहते हैं । इसी प्रकार मनुष्य के जीवन के प्रत्येक आन्तरिक आदर्श हैं उन सबका आधार सत्य है । अपने वास्तविक स्वयं के प्रति सच्चा रहना, यही सत्य है यही वास्तविक धर्म है ।

ऋत की कीर्ति बहरे जाना में भी पहुँच चुकी ह ।

ऋत की जड़ें सुदृढ़ हैं,

विश्व के नाना रमणीय पदार्थों में ऋत मूर्तिमान् हो रहा है ।

ऋत के आधार पर ही अग्नादि साध-पदार्थों की कामना की जाती ह

ऋत के कारण ही सूर्य-रश्मियाँ जल में प्रविष्ट हो उसको ऊपर से जाती ह ।

४५ वृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यान्ते प्रजापति ।

अभयाममृतेऽव्याच्छदा सत्ये प्रजापति ॥

(यजु० १९।७७)

सृष्टि-कर्ता परमेश्वर ने सत्य और असत्य के रूपों को देखकर पृथक्-पृथक् कर दिया है । उनमें से धरा की पात्रता सत्य में ही ह और अथवा की अनुत्त या असत्य में ।

४६ पाच सत्यमणीय

(यजु० १९।४)

म अपनी वाणी म सत्य को प्राप्त करूँ ।

४७ देवा देवरवन्तु मा ।...सत्येन सत्यम्...

(यजु० २०।११-१२)

ममस्त देवी शक्तियाँ मेरी रक्षा कर और मुझ सत्य में सत्पर रत्न की शक्ति प्रदान करें !

४८. सत्यं च मे भद्रा च मे जगन्ना...पतेन पश्यन्ताम् ।

(यजु० १८।५)

यज्ञ द्वारा म सत्य श्रद्धा और जीवन की सक्रियता का प्राप्त करूँ ।

४९ सा मा सत्योक्तिः परि पातु विजितः ।

(ऋग्वे० १०।३७।२)

सत्य भाषण द्वारा ही म धन को सब बुराईयों से बचा उनता ह ।

पवित्रता की भाषना

५० ...देव सपित ...मा पुनीहि दिव्यः ।

(यजु० १०।८१)

हे सवितृ-देव ! मुझ सय प्रकार से पवित्र कीजिये ।

५१ पवमान पुनातु मा प्रत्ये रक्षाय शोभते ।

अथो अरिष्णतातम ॥ (अथर्व० ६।१९।२)

बुद्धि पराक्रम जीवन और निरापद आत्म-रक्षा के उद्देश्य से पवित्रता पायव पवमान देव मुझ सय प्रकार से (अर्थात् शरीर मन और वाणा में) पवित्र कर ।

आत्म विश्वास की भावना

५२ अहमिन्द्रो न पराजिये । (ऋग्० १०।४८।५)

मैं इन्द्र अर्थात् शक्ति का केन्द्र हूँ मेरी पराजय नहीं हो सकती ।

५३ यथा विश्वस्य मृतस्याहमस्मि यथास्तम ।

(अथर्व० ६।५८।३)

जगत के समस्त पदार्थों में मैं सबसे अधिक यशस्वाला हूँ । अर्थात् मनुष्य का स्थान सृष्टि के समस्त पदार्थों से ऊँचा है ।

५४ पुण्यो वै प्रज्ञापतेर्नैविष्ठम् । (शतपथब्राह्मण २।५।१।१)

सब प्राणियों में मनुष्य नष्टिर्त्ता परमेश्वर के अत्यन्त समीप है ।

५५ अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भव्याम् ।

अभोपादस्मि विश्वापाशाशमाशां विधातहि ॥

(अथर्व० १२।१।५८)

मैं स्वभावतः दूसरों पर विजय पानवाला हूँ । पृथ्वी पर मेरा उत्कृष्ट पद है । मैं विराही शक्ति का परास्त कर, समस्त विश्व-बाधाओं का दवा कर प्रत्येक दिशा में सफलता प्राप्त करनेवाला हूँ ।

५६ अनुपा नाम ते लोका अग्नेन तपसायता ।

तांस्ते प्रेत्यापि यच्छन्ति ये के सस्महन्तो जनाः ॥

(यजु० ४।३)

आरमरु या आरम चेतना का विस्मृति-रूप आरमहत्या (अर्थात्

जीवन में आत्म-विश्वास की भावना का अभाव) न केवल व्यक्तियों के लिए किन्तु जातियों और राष्ट्रों के लिए भी किसी भी प्रकार की प्रेरणा में विहीन अज्ञान का अन्वेषण म गिराकर सर्वनाश का हतु हस्ती है।

आजस्वी जीवन

५७ तेजो-ति तेजो मयि षेहि
घोषमति वीर्यं मयि षहि
बलमति बल मयि षहि
ओमोऽस्मोओ मयि षहि
मग्युरति मग्युं मयि षहि
सहाऽस्ति सहा मयि षहि ॥ (यजु० १११)

मर भावर्ग देव !

आप मज-स्वस्व ह मममे तज स्वाति काजिण !
आप वाय-स्व ह मुम वीर्यवान् काजिण !
आप बल-स्व ह मुम बलवान् धनाइण !
आप आज-स्वस्व ह मुम आजस्वी बनाण !
आप मग्य-स्व ह मुमम मग्यु का पारण कीजिण !
आप सह-स्वस्व ह मम सहस्यान् कीजिण !

वीरता तथा निम्नता का भावना

५८ सा हवा परिपण्णिनो बिदम (यजु० ४। ६)

सावधान रहा कि तुम्हारे वास्तविक उन्नति में बाधक शक्त नुनार विजय प्राप्त न कर सकें ।

५९ इन्द्रम मयना घयमभि प्याम पश्यतः ।

पूज्या धृत्रायप्रति ॥ (अथर्व० ३। १। १)

^१ मग्य—अन्वाप का म मग्यवाण जान। ^२ मग्य—विशेषियों को दत्ता देनेवाला यज्ञ आदि का ।

सत्कार्यों में बाधक जो शत्रु हमपर आयात करें, हमारा कर्तव्य है कि
वीरोचित क्रोध और पराक्रम के साथ हम उनका दमन करें और उनको विनष्ट
कर दें ।

६० मम पुत्राः क्षत्रहन् । (ऋग्वे० १०।१५।१३)

मेरे पुत्र क्षत्रु का हनन करनेवाले हों ।

६१ सुधोरासो बयं..... कथेम । (ऋग्वे० ९।६१।२३)

हमारे पुत्र सुवीर हों और उनके साथ हम क्षत्रुमा पर विजय प्राप्त
करें ।

६२ मा भे, मा सविषमा । (यजु० १।२३)

तुम न भयभीत होओ, न उद्विग्न ।

६३ यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिप्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभे ॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिप्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभे ॥ (मयव० २।१५।१३)

जैसे आकाश और पृथ्वी अपने-अपने कर्तव्य के पासन में न तो डरते
हैं न कोई उनका हानि पहुंचा सकता है इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी भय
को न प्राप्त है ।

जैसे सूर्य और चन्द्रमा न तो भय को प्राप्त होते हैं न कोई उनका हानि
पहुंचा सकता है, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी भय को न प्राप्त है ।

६४ मह्य नमन्तां प्रविशच्चतयः (ऋग्वे० १०।१२८।१)

मर छिप सब दिशाएं शत्रु जायें । अर्थात् प्रत्येक दिशा में मुझे सफलता
प्राप्त हो ।

शारीरिक स्वास्थ्य तथा यदीधायुष्य

सतया भज्येति तायं मे पाद्वि ।

आयुर्वा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।....

....धन्मे तस्या ऊर्तं तन्म आ पुन ॥ (यजु० ३।१७)

अग्निदेव ! तুম घरीर की रक्षा करनेवाले हो

मेरे घरीर को पुष्ट कीजिए ।

तुम आयु को देनेवाले हो

मुझे पूर्ण आयु दीजिए ।

मेरे घारीरिक स्वास्थ्य में,

जो भी बर्मी हो उसे पूरा कर दीजिए ।

६६ वाङ्म आसन्नतो प्राणश्चक्षुरक्ष्णो ध्योत्रं कर्णयो ।

अपलिता केसा अशोणा वन्ता बहु बाह्योबलम् ।

ऊर्ध्वोरोमो जङ्घयोश्च अपाहयो प्रतिष्ठा....

(अथर्व० १९।६०।१-२)

मेरे समस्त अंग पूण स्वस्थता से अपना अपना कार्य करें यही मैं चाहता हूँ । मेरी बाणी प्राण आँख और बान अपना-अपना काम कर सकें ! मेरे बाल बाले रहें ! दाँतों में कोई राग न हो ! बाहुआ में बहुत बल हो ! मरी उर्रों में ओज जाँपा म बग और परा म दृढ़ता हा !

६७ आयुर् यतो न कल्पता...प्राणो...अपानो...व्यानो...चक्षुर्...

ध्योत्र...वाग्...मनो...आत्मा यत न कल्पता स्वाहा ॥

(यजु० २०।३३)

प्राकृत जगत् में नाम करनेवाली अग्नि वायु आग्नि देवा दक्षिणा व साय सामंजस्य का जीवन (= यज) व्यतीत करने हुए म पूण आयु प्राप्त कर सकूँ मेरी प्राण अपान आदि दक्षिणी तथा चक्षु आग्नि द्रिष्टिया अपना अपना काम ठीक तरह कर सक और इस प्रकार मेरे व्यक्तित्व (— आत्मा) का पूण विकास हा—यहाँ मरी आन्तरिक कामना है यज मेरा हादिव अभिलाषा और प्रार्थना है !

६८ अन्मा भवतु मस्तनु ।

(यजु० २०।४०)

हम चाहते हैं कि हमारे शरीर पत्थर के समान सुदृढ़ हों ।

६९ भद्र जीवन्तो जरन्नामदीमहि । (अथ० १०।३।७।६)

हम वस्त्राण-मार्ग पर चलते हुए वृद्धावस्था का प्राप्त हों ।

७० अह सर्वमामुर्जिष्यासम् । (अथ० ११।७।१)

म अपना जीवन में पूर्ण क्षय प्राप्त करूँ !

७१ तच्चक्षुर्वेदहितं पुरस्ताच्छक्रमुच्चरत् ।

पश्यन् शरत् शतम् । जीवेन् शरत् शतम् ।

शण्णयाम शरत् शतम् । प्र ब्रह्मन् शरत् शतम् ।

अदीनां स्यान् शरत् शतम् । भूयश्च शरत् शतात् ॥

(यजु० ३६।२०)

बहू देखो ! इन्द्रिया के स्वास्थ्य के निर्वाहक सबसे बहुस्पानीय प्रकाशमय सूर्य भगवान् सामग्री उदित हो रहे हैं । उनसे स्वास्थ्य का प्राप्त करत हुए हम भी वर्ष तक वसों गी वर्ष तक जीयें सी वर्ष तक सुनें गी वष तक बाँटें, गी वष तक किसीके आश्रित न हों और गी वष के अनन्तर भी ।

स्वर्गीय पारिवारिक जीवन

७२ सहृदयं सामनस्यमभिद्वेयं कृणोमि च ।

अम्यो अम्यमभिहृत्य बर्त्तन् आसमिवाप्त्या ॥

अमुद्रतं पितुं पुत्रो मात्रा भवतु संमता ।

माया पश्ये मधमतीं वार्यं वरतु शान्तिवाम् ॥

मा भ्याता भ्रातरं द्विजन मा स्वसारमुत स्वसा ॥

सम्यक् सद्रता भूत्वा बार्त्तं वदत भद्रया ॥

(अथ० ३।३०।१-३)

हे गृहस्था ! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर ऐक्य मोहार्थ

और सद्भावना होनी चाहिए। द्वेष की भावना भी न हो। तुम एक-दूसरे से उनीतर प्रेम करो। उसे जो अपने पुरस्ते जमे मछड़े को प्यार करती है।

पुत्र अपने माता-पिता का आभाकारी और उनके साथ एकमन होकर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेह-युक्त वाणी का ही व्यवहार करे।

भाई भाई के साथ और बहन बहन के साथ द्वेष न करे।

तुम्हें चाहिए कि एकमन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम का बंधन वाली वाणी का ही व्यवहार करो।

आदर्श सामाजिक जीवन

७३ स गच्छन्त्यं सं ब्रह्मं स वो मर्तांसि ज्ञानताम् ।

येना मार्गं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ॥

(ऋग्० १०।१९।१२)

ह मनुष्यो जन्म सनातन से विद्यमान दिव्य शक्तियों से सम्पन्न मूल्य चंद्र याव अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से मानो प्रेम से अपने अपने कार्य का करते हैं। वैसे ही तुम भी समष्टि भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्य में प्रवृत्त होओ। एकमत से रहो और परस्पर सद्भाव रखो।

७४ समानो मन्त्र समिति समानी

समान मनः सह विसृजेयाम् । (ऋग्० १०।१९।१३)

तुम्हारी मन्त्रणा में गमिष्ठियों में विचारों में और चिन्तन में समानता हो सद्भावना हो। यथार्थ और दुर्भावना न हो।

७५ समानी च भावृति समाना हृदयानि च ।

समात्मस्तु वो मनो यथा यः सुतहासति ॥

(ऋग्० १०।१९।१४)

तुम्हारे अभिप्रायों में तुम्हारे हृदयों (मनो भावनाओं) में और

अत्यन्त विस्तृत सेज से युक्त सूय का उषय हम सबके लिए शांति-
दायक हो। पारों दिशाएं हमारे लिए शांति देनेवाली हों !

८७ वा नो वातः पवतां शं मस्तपतु सूयः ।

शं न कनिष्कश्च देव पर्जन्यो अग्निवर्षतु ।

(यजु० ३६।१०)

वायु हमारे लिए सुख-रूप छाँवर बने ! सूय हमारे लिए सुख-रूप
होकर ठप ! अत्यन्त गरजनवाले पजय देव भी हमारे लिए सुख-रूप हो
कर अच्छी तरह बरसे !

दूसरा अध्याय

वैदिक धारा का सूक्ति-संक्षेप

इस प्रकरण में हम यदिक-महिताओं तथा ब्राह्मण-ग्रंथों से चुनी हुई विविध सूक्तियों का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। मनुष्य और मनुष्य-जीवन के विभिन्न पक्षा या पहलुओं पर बहुमूल्य गम्भीर अनुभव से पूर्ण तथा उपयोगी विचारों को व्यक्त करनेवाली इन सूक्तियों का महत्त्व स्पष्ट है।

प्रायः प्रत्येक सूक्ति बहुमूल्य रत्न के समान है। प्रत्येक सूक्ति पर एक व्याख्यानमय अच्छा निबंध लिखा जा सकता है।

प्रायः यह भावना फली हुई है कि यदिक वाङ्मय में यज्ञादि का ही वर्णन है। विछल प्रकरण से स्पष्ट है कि यदिक मात्र मरितीय उदात्त भावनाओं और अमूल्य जीवन संदेशों में परिपूर्ण है। इस प्रकरण में यह स्पष्ट हो जायगा कि यदिक वाङ्मय में एक विचार भी पुष्पल मात्रा में पाया जाने है जिनका व्यावहारिक दृष्टि में भी बड़ा मूल्य है।

इस प्रकरण के दो भाग हैं। प्रथम भाग (१) (वैदिक-सूक्ति-संज्ञरी) में यदिक महिताओं में और विविध भाग (२) (ब्राह्मण-सूक्ति-संज्ञरी) में ब्राह्मण-ग्रंथों में दृष्ट विविध सूक्तियों का संग्रहित है।

१०८ नहि स्वमायुश्चिकित्ते जनव (७।२१।२)
मनुष्यों में कोई अपनी आयु अथवा जीवन-काल को नहीं जानता ।

१०९ तस्य व्रतानि न मिनस्ति धीरा (१।३१।११)
समझदार लोग परमेश्वर के नियमों का उल्लंघन नहीं करते ।

११० न स्रजस्त रयिर्मशत् (७।३२।२१)
दूसरा स झगड़ा करने वाला मनुष्य धन का नहीं पाता ।

१११ चिकित्सातो अत्तेतसं नयस्ति (७।६०।७)
रोगी मनुष्य ही मजानिया को मार्ग दिखाता है ।

११२ मा मा निहा ईयत मोत ऋत्विः । (८।८८।१४)
प्रमाद अथवा आलस्य के वश होकर तथा झोका-निहा के कारण हमका
अपने कर्तव्य-मार्ग में व्यय न होना चाहिए ।

११३ अतस्य मृङ्गमुर्विया बि पश्ये (८।८९।५)
मृष्टि के नियमों की सत्ता सर्वत्र फैली हुई है ।

११४ मञ्जुस्यविद्येतसं (१।६४।२१)
अज्ञानी ही बड़ा करता है ।

११५ तला रिष्टं बर्षं मित्राणं पक्ष्मा मुन्यस्तमिच्छति । (१।७१।११)
मित्रों की दूरी हुई वस्तु के लिए वर्षों की तलाश की जाए, और प्रायः
पक्षियों के लिए दृष्ट्यार होता है । अर्थात् इस मंत्रको दक्षिण स्वायम्भो
होती है ।

११६ मज्जमा बीव्यं वृषिमिकुपस्व । (१०।३६।१३)
जुआ मत गला । मती करा ।

११७ सत्यतोत्तमिता भूमि (१०।८।१२)
पथी मरय में ठहरी हुई है ।

११८ म त सप्ता यो न ब्रवाति सत्य (१०।११।७।४)
यह मित्र नहीं है जो मित्र का गणना नहीं करता ।

११९ केवलाघो भवति केवलादी (१०११७।६)

जा अकेला साता है यह केवल पापमय हाता है ।

धुवलयजुर्वेद-सहिता

१२० उन्नतरिक्षमन्येमि (१।७)

मैं अपनी उन्नति के लिए विस्तृत क्षत्र का चाहता हूँ । अर्थात् उन्नति के लिए विस्तृत क्षत्र की आवश्यकता होती है ।

१२१ धूव धूवस्त धूर्व त योज्स्मान् धर्वति (१।८)

मारत हुए का मारा जो अवारण हम पर [जायात करना चाहता है उसका नष्ट करेगा ।

१२२ मा म , मा संघिष्या । (१।२)

म छोटे म उद्विग्नता को प्राप्त होगा ।

१२३ श्रुतस्य पथा प्रत (७।४५)

प्राकृत नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यनात करा ।

१२४ अमाषष्टा सीदत सहोमस (१०।४)

संगठित होकर रहने से तुम्हें कोई घमना न करेगा ।

१२५ ग्रह्य ह्यसम व्येति (१४८)

सूर्य के समान ही वह अथवा ज्ञान-विज्ञान का मा प्रमाण है ।

१२६ आशिक्षाय प्रदिनम् । उपनिषाया अभिप्रदिनम् । (३०।१०)

यह समान छात्रों का प्रश्न करता है यहाँ बिना विषय का ज्ञान नष्ट हो, समीक्षा हो बिना प्रार्थना का ठाक-ठीक गमना सम्पन्न है ।

१२७ भूत्य आगरणम् । अभूत्य स्वपनम् । (३०।१७)

स्मरण गया कि जागने से उन्नति होती है और गान से अवनति ।

१२८ प्रियाय प्रियवादिभम् (३०।१)

अपने प्रिय के लिए प्रिय अर्थात् मधुर वाचनवाचक का ही नियमन करना ।

१२९ हिरण्मयन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मयम् (४०।१७)

मय्य मा मृत सुवर्ण-जती धमकीसी वस्तुवा मे छिया हुआ
रहता है ।

सामवेद-संहिता

१३० पाथका म सरस्वती (पू० २।१०।५)

हमारी विद्या पवित्र विपारा को फलानवासी हो ।

१३१ वेपत्य पश्य काम्यम् (प० ४।४।३)

सुम प्रकृति-श्रेणी के सौंदर्य का जो मूर्त-रूप में भगवान् का काम्य है,
देखा और उससे प्रसन्नता को प्राप्त करो ।

१३२ सवा गाप शुचयो विश्वपायस (पू० ५।६।६)

गौएँ सदा पवित्र और सबका बस्याण करनेवासी होती हैं ।

१३३ जनस्य गोपा मममिष्ट जागृनि (उ० २।१।६)

जागृत्य व्यक्त ही जनता की रक्षा कर सकता है ।

अथर्ववेद-संहिता

१३४ सं श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन वि रापिपि । (१।१।४)

हम ज्ञान विज्ञान की उन्नति में लग रहें उममें बाधक न हों ।

१३५ भद्रादपि श्रेयः श्रेहि (७।८।१)

सुम भद्र से भद्रतर जीवन को प्राप्त करा ।

१३६ सख्यासख्य वक्षसी पस्पृधाते (८।४।१२)

सत्य भाषण और असत्य भाषण में स्वर्ण रहती है । वे एक गाय नहीं
रह सकते ।

१३७ सर्वो वा एव जग्यपाप्मा यस्याप्रमदन्ति (९।७।८)

जिमने भद्र को दूसरे पाते हैं उसने पाप नष्ट हो जाते हैं ।

१३८ सर्वो वा एवोजग्यपाप्मा यस्याप्रमादन्ति । (९।७।९)

जिमने भद्र का दूसरे नहीं पाते उनके पाप नष्ट रहते हैं ।

१३९ अंगितवायतिबाधनीयात् (९।८।८)

भर में माय हुए अतिवि के भाजन कर उन पर ही भाजन करना
चाहिए ।

१४० मातामूनि पुत्रो महं पुषिष्या (१२।१।१२)

मूनि मरी माता ह और म जयका पुत्र हूँ ।

१४१ ये पुष्ये ब्रह्म विबुस्ते बिबु परमच्छिनम् (१०।७।१७)

जो मानयता में ब्रह्म के दशन करते ह वास्तव में वे ही परमेश्वर का समझते हैं ।

२

ग्रहणीय-सूक्ति-मञ्जरी

एतरेय-ग्राह्यण

१४२ कृषी न ऊर्ष्याञ्चरषाम जीयसे (२।२)

हे अग्निदेव ! हमें उद्यागशील जीवन के लिए समुन्नत कीजिय ।

१४३ परिमितं च भूतम् । अपरिमितं भव्यम् । (४।६)

भूत (जो हा चुका हूँ) परिमित और भव्य अपरिमित होता ह ।

१४४ भद्राग्नि धेमः प्रेहि (१।१६)

तुम भद्र से मद्रतर जीवन को प्राप्त करा ।

१४५ धमत्तंगीत

६२ पुण्यरूपेण पर्येत्य (राहितम्) उवाच—

मानाभान्ताय श्रीरस्तोति राहित ! शुभम् ।

पापो नृपद्वरो आ इन्द्र इच्छरतः सता ॥१॥

परयेति ।...

पुषिष्यो धरतो जडय भूतुरात्मा पश्यति ।

शरेभ्यः सर्वे पाप्मानः धमेण प्रपद्यन्ताः ॥२॥

घरवेति । ..

आरते भग आसीनस्मोर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठत ।

घोसे निपद्यमानस्य घराति घरतो भग ॥३॥

घरवेति । ..

कस्मिं दामानो भवति सजिहानस्तु द्वापर ।

जतिष्ठस्त्रेता भवति कुतं सपयते घरन् ॥४॥

घरवेति । ..

घरस्य मधु ब्रित्वति घरस्स्वाधुमुमुम्बरम् ।

सूर्यस्य पश्य भेमाण यो न सग्नयते घरन् ॥५॥

घरवेति । ..

(७।१५)

इन्द्र न पुरुष रूप में आकर रोहित में कहा—

हे रोहित ! सुनते हैं कि जो धर्म से धात नहीं हूँ उसको भी प्राप्त नहीं होती । भग्य मनुष्य भी जो बैठा रहता है निकम्मा ममज्ञा जाता है । इन्द्र उसीकी सहायता करता हूँ जो धर्मशील हूँ । इसलिए बराबर धर्म करते रहो ॥१॥

धर्म-शील पुरुष की आर्षे स्मृति के पुण्या से पुणित होती है और उसके पुष्ट शरीर में स्वास्थ्य का फल लगता है । उसके घारे पाप धर्म से मानो मारे हुए निश्चय पड़े रहते हैं । इसलिए बराबर धर्म करते रहो ॥२॥

बैठे हुए का सीमाध्य बड़ा रहता है । खड़े हुए का खड़ा हो जाता है । पड़े रहनेवाले का सीमाध्य सांता रहता है और चलनेवाले का गौमाध्य चमन लगता है । इसलिए बराबर धर्म करते रहो ॥३॥

जो सा रहा हूँ वह कस्मिं निद्रा में उठ-उठनेवाला द्वार हूँ । उठकर गढ़ा हो जानवाला भूता हूँ । पर धर्म करनेवाला इन्द्रिय धर्म जाता है । इसलिए बराबर धर्म करते रहो ॥४॥

धर्म-शील मनुष्य ही मधु अर्थात् जीवन के माध्यम को पाता है । यही स्वादिष्ट फल का आस्वाद होता है । मूष के धर्म का देखो जो भग्य चलता

रहता है और कभी बालस्य नहीं करता । इसलिए बराबर धम करते रहो ॥५॥

१४६ वहति ह व वल्लिर्भूरो घासु घण्यते । (६।१८)

कमशील व्यक्ति जिस काम में भी रगा दिया जाता है उसका पूरा करने छाड़ता है ।

१४७ स वै गुरुर्मार भूणाति (४।१३)

अपनी शक्ति से अधिक भार उठान से मनुष्य को हानि ही होती है ।

१४८ यं सहृत्वात्तर्कं कुर्वात् कुपविनसतोऽपरम् । (७।१७)

जिसने एक बार पाप किया वह दूसरे पाप में प्रवृत्त होता है ।

१४९ अद्धा पत्नी सत्य यजमान । अद्धा सत्यं तदित्युसम मियुनम ।

अद्धया सत्येन मियमेन स्वर्गोऽस्तोकान् अयतीति ।

(७।१०)

जीवन-यज्ञ में अद्धा मानो परमो है और सत्य यजमान है । अद्धा (भावना-मूलक) और सत्य (बुद्धिमूलक) का उत्तम जोड़ी है । अद्धा और सत्य की जोड़ी से मनुष्य दिव्य लोका वा (= वास्तविक ब्रह्माण्ड का) प्राप्त करता है ।

१५० अक्षनाया च पाप्मा मतिः (२।२)

भूख (= पेट का न भरना) हो सब पापों की जड़ है । वही बुद्धि को मल्ट करती है ।

१५१ यस्यवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति ।

(१।५)

जिसने पाम अथवा अन्न खाता है सतार में बहा अत्यधिक महत्त्व को पाता है ।

१५२ यो च भवति य धेष्ठतामदनुते तस्य बाधं प्रीरितामनु प्रवरन्ति ।

(२।१५)

जो मरता और धेष्ठता को पा लेता है उसको बहो हुई बात का मख मनरान करने है ।

१५३ गिरो वा एतयास्य परातिथ्यम् । (११२५)

अतिथि-सत्कार को यज्ञ का प्रमुख अंग समझना चाहिए ।

१५४ ग्रह्य च क्षत्रं च सन्धिते । (११११)

ग्रह्य (= ज्ञान-सन्धित) और क्षत्र (= सैन्य-सन्धित) परस्परान्वित
होते हैं ।

१५५ ग्रह्यणि तस्मै च क्षत्रं प्रतिष्ठितम् । क्षत्रे ग्रह्य । (८१२)

ग्रह्य में क्षत्र की स्तिथि होती है और क्षत्र में ग्रह्य को ।

१५६ यजमानो वै यज्ञ । (११२८)

यजमान का स्वरूप ही यज्ञ में प्रतिफलित होता है ।

१५७ आ त्वेव भद्राय होतव्यम् । (५१२७)

हवन-यज्ञ की वास्तविकता भद्रा में ही होती है ।

१५८ मनसा वै यज्ञस्तापते मनसा क्रियते । (११११)

मान-पूरस्वर ही यज्ञ किया जाता है ।

१५९ एतद्धं यज्ञस्य समुद्धं यद्रूपसमुद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभियवति । (११४)

याज्ञिक कर्म की संपन्नता या पूर्णरूपता इसीमें है कि उसमें जो मंत्र प्रयुक्त होते हैं वे वास्तव में उस काम का यत्न करते भी हैं जो यज्ञ में किया जाता है ।

१६० यत्र यज्ञ च यजमानवर्गो भवति, कस्यत एव यज्ञोऽपि ।

तस्य जनताय कस्यते यज्ञं विद्वान् यजमानो यज्ञी यजते ।

(१११३)

यज्ञ में तभी तब वास्तविकता रहती है जबतक यह विद्वान् यजमान की अधीनता में रहता है । उगो दत्ता म यह जनता का हित संपादन करता है ।

१६१ सर्वस्य च याव प्रेमार्णं सवस्य आरतां गताः ।

(४११७)

गौमों का दीगवर्ग गवक हृदय में प्रेम उमट आता है और वे गवका सदर प्रतीत होती हैं ।

शतपथ ब्राह्मण

१६२ यथा ह भवति य एवं चिद्वान् सत्य वदति ।
(१।१।१।५)

जो मनष्य इस प्रकार सत्य के महत्व का समझता हुआ सत्य-भाषण करता है उसको मूर्तिमान् यथा ही समझना चाहिए ।

१६३ मध्यममयम् (१।१।२।२३)

मध्यम मार्ग के अवलम्बन में कोई भय नही होता ।

१६४ एते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः ।
(१।१।३।६)

य सूर्य का रश्मियों निश्चित रूप से गंवगों को दूर धरके पवित्र करने वाली है ।

१६५ अग्निर्हि रक्षतामपहन्ता । (१।२।१।६)

अग्नि हानिकारक जंतुओं का मष्ट कर देता है ।

१६६ संग्रामो य धूर्म् । संग्रामे हि धूर्ं क्रियते ।
(१।२।१।१०)

संग्राम का दूरता का रूप समझना चाहिए क्योंकि संग्राम में दूर काम किया जाता है ।

१६७ तद्धि समृद्धं यथात्ता कनीयान् आधो भूयान् ।
(१।३।२।१२)

मानवाले कम हैं और गाय पशु अधिक हैं यही समृद्धि का रूप है ।

१६८. सब वा इदमेति य प्रेति य । (१।४।१।६)

त्रिया और प्रतित्रिया इस अगत् में स्वभाव में सबत्र दग्नी जागे हैं । अथवा जाना और जाना सबके साथ लगा है ।

१६९ याव्य ममसो हृसीयसो । अपरिमिततरमिय मनः ।
परिमिततरेव हि वायः ।
(१।६।६।७)

मन में वाता बही छोटी है । मन में मन वही अधिष्ठान प्रतिष्ठित और वाणी वही अधिष्ठान प्रतिष्ठित प्रतीत होती है ।

१७० मनसा वा इव सर्वभाषम् (१७७४१२२)

यह सब कुछ मन से प्राप्त है । अर्थात् मन की गति के अन्दर है ।

१७१ मत्स्य एव मत्स्य गिरति (१८८११३)

मत्स्य को मत्स्य ही गिरल जाता है ।

१७२ न इव इवमुपासीत । को हि मनुष्यस्य एवो वेद ।

(२१११३९)

‘कस करेगा कल करेगा’ ऐसी बात न करनी चाहिए । मनुष्य के कल का कौन जानता है ?

१७३ अद्या हि तद् यद् भूतम् ।...अनद्या हि तद्

यत् भविष्यत् ।

(२१३११२५)

जो हो चुका है वह निश्चित है । जो होनेवाला है वह अनिश्चित है ।

१७४ अद्या हि तद् यद्यद् । अनद्या हि तद् यज्ज्ज् ।

(२१३११२८)

जो आज है वह निश्चित है जो नष्ट होगा वह अनिश्चित है ।

१७५ भूमा यं रायस्पोषः । धीर्वै भूमा ।

(३११११२२)

समृद्धि धन की पुष्टि और रुढ़मी, इसका एक ही अभिप्राय है ।

१७६ अमेध्यो वै पुरुषो यवनृतं वदति । तेन पूतिरस्तरत ।

(३११११२०)

मनुष्य अपवित्र है क्योंकि झूठ बोलता है । इसीसे उसके अंदर से दुर्गंध निकलती है ।

१७७ सुवासा एव बुभूषेत् ।...अप्यन्तीसं सुवासत्

विब्रूयते ।

(३११२११६)

मनुष्य को अच्छे वस्त्रों का ही धारण करना चाहिए । बुरा मनुष्य को भी जो अच्छे वस्त्र पहने हुए हैं तब कोई देखना चाहता है ।

१७८ पुरुषो यज । पुरुषसंमितो यज ।

(३११४१२६)

मनुष्य ही यज है । यज का स्वरूप मनुष्य पर निर्भर होता है ।

१७९ मनसा वा इव बाधता । मनो वा इव पुरस्ताद्वाच ।

(३१२४१११)

याजी को मन पकड़ रहता है । याजी से मन पहले आता है ।

१८० तर्हि अप्रमुनयतो विद्या परितुहम् । (३१३११२६)

राज्य-शक्ति की दाय-वामें दुकृता प्रजा द्वारा ही होती है ।

१८१ द्वितीयवान् हि षोडशान् । (१।७।३।८)

जिसका साथी है वही शक्तिमान होता है ।

१८२ सत्यं वै चक्षुः । सत्यं हि प्रजापतिः । (४।२।१।२६)

चक्षुः सत्य है और सत्य ही प्रजापति है ।

१८३ विज्ञा वा क्षत्रियो घसवान् भवति । (४।३।३।६)

प्रजा से ही राजा बलवान होता है ।

१८४ अग्नेन हीर्यं सयं गृहीतम् । तस्माद् पायन्तो मोक्षानमश्नन्ति

ते न सर्वे गृहीता भवन्ति । एवम स्थितिः ।

(४।६।५।४)

मध्यम सबको पकड़ रखा है । अतः जो कोई भी हमारे यहाँ भोजन करते हैं वे सब हमारे हो जाते हैं । यही वस्तु-स्थिति है ।

१८५ पराभवस्य हतन्मुखं यदतिमानः । (५।१।१।१)

अति अभिमान् पराभव का मुख होता है ।

१८६ अर्थो ह वा एव आत्मनो यज्जाया ।...यावज्जायां न विन्दते... असर्वा हि तावद् भवति । (५।२।१।१०)

स्त्री पुरुष का आधा भाग होती है । जबतक पुरुष स्त्री को नहीं पाता है तबतक वह अपूर्ण ही रहता है ।

१८७ को वेद मनुष्यस्य । (५।५।२।२)

मनुष्य को कौन जानता है ? अर्थात् मानव को मानव-जावन की, समस्या या समाधान क्या कहिये है ।

१८८ यः सत्यं वृत्स्नो मन्यते तावति यय गीते वा रमते ।

(६।१।१।१५)

मनुष्य जब अपनेको पूरा समझता है तब मान लगता है अपना गाना सुनकर प्रसन्न होता है ।

१८९ न ह्यपुपुनेन मनसा विज्यमानः सप्रति दानोति क्षमः ।

(६।२।१।१४)

भन लगाम बिना बाई किसी काम को ठीक तरह नहीं कर सकता ।

१९० यत्तु वा भात्मसम्मितमर्धं तदवति । तन्न हिनस्ति । यत्तु भूयो
हिनस्ति तत् । यत्तु नीमो न तदवति । (६।६।३।१७)

अपनी आवश्यकता के अनुसार भाजन किया हुआ अन्न पुष्टि करता है ।
हामि नहीं करता । अधिक होन पर हानि करता है । कम होन पर पुष्टि
नहीं करता ।

१९१ अन्नं य बिनाः (६।७।३।७)

प्रजा का आधार अन्न होता है ।

१९२ भीर्वे रस्यन् (६।७।३।७)

सदमी से ही राज्य चलता है ।

१९३ उष्ण एव जीयिष्यन् । शीतो मरिष्यन् । (८।७।२।११)

जीनवाला गरम खोर मरनवाला ठंडा होता है ।

१९४ न र्वं वानानामस्तिरिक्तमस्ति (८।७।२।१९)

कामनाओं का अन्त नहीं है ।

१९५ ते ह ते धीरतरा अघाततरा य उभयतोऽभयस्कराः ।

(९।१।१।२०)

दानों और के नमस्कार भयान्त भयान्त और अघाति के हेतु होने
हैं । अर्थात् दा विरुद्ध पदों के संघर्ष में दोनों की ही में ही विजय न हानि
होती है ।

गोपथ-ब्राह्मण

१९६ परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षप्रियाः ।

(१।१।१)

देवता परोक्ष से प्रेम करते हैं, प्रत्यक्ष से द्वेष ।

१९७ स मनसा ध्यायेद् दद्याद् महं किञ्चन माता

पुत्राप्स्यति तस्यैव तद् भविष्यति । तद् इमं तस्य भवति ।

(१।१।१)

यदि मनुष्य किसी काम को करना चाहे तो उसे मन से ध्यान करना चाहिए— 'म जिसका मन से ध्यान करेगा वह अक्षय्य ही होगा । सो निश्चय रूप से वसा ही होता है ।

१९८ रूपसामान्यावयवसामान्यं भेदीय (१।१।२६)

केवल रूप को समानता से अथ की समानता अधिक समीपता को प्रकट करती है ।

१९९ पूर्वं वयसि पुत्रा पितरमुपजीवन्ति ।...उसमे

वयसि पुत्रान् पितोपजीवन्ति । (१।४।१७)

पहली वय में पुत्र पिता पर निर्भर रहते हैं । अन्तिम वय में पिता पुत्रों पर निर्भर रहता है ।

२०० यजमानऽधःशिरसि पतिते स शेनाऽधःशिरा पतति ।

(२।२।१५)

यजमान के उल्टे-शिर गिरने पर, वह श्व उल्टे-शिर गिर जाता है ।

तीसरा अध्याय

उपनिषदों का प्रसार

भारतीय संस्कृति की विभिन्न ज्ञान-धाराओं के संबन्ध में उपनिषदों का प्रायः घेमा हो स्थान है जैसा गंगा, यमुना मत्तलज रावी आदि नदियों के संबन्ध में हिमालय पर्वत का है । भारत की पिछली समस्त ज्ञान धाराओं में उपनिषदों का साक्षात् या असाक्षात् प्रभाव निखार देता है । इसीलिए सहस्रों वर्षों से बराबर उपनिषदों का अद्वितीय महत्त्व भारत में बला भाषा है । प्राचीनकाल के समान ही आज भी उनमें सहस्रों संतप्त मानवों की शांति का यादवत संदेश मिल रहा है । इसलिए उनके प्रसार के रूप में कुछ बिदिष्ट बचन यहाँ दिये जात हैं ।

हृदोपनिषद्

२०१ यस्तु सर्वाणि भूताम्यात्मयेवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चारमानं ततो म विजुमुप्सते ॥६॥

जो समस्त प्राणियों को अपने में और अपनेका समस्त प्राणियों में देखता है वह उपर्युक्त एकात्म-दर्शन के कारण जगत्की गुणा या उपा का पान नहीं समझता । अर्थात् वह सबके हित में ही अपने हित का समझता है ।

२०२ ज्ञान (=विद्या) और एम (=अविद्या)

अप्यं तमः प्रविशन्ति वेदविद्यामुपामते ।

ततो भूय इव ते तमो म उ विद्यायां रतः ॥

अप्यवेदाहुर्विद्याम्यदाहुरविद्या ।

इति शुभ्रं धीराणां ये मस्तद्विचक्षिते ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते ॥९-११॥

जो केवल कर्म-मार्ग का सेवन करते हैं वे अज्ञान-रूपी घोर-अंधकार में ही रहते हैं ।

जो केवल ज्ञान-मार्ग में रत रहते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार में रहते हैं ।

ज्ञान (= विद्या) का दूसरा फल बताया गया है और कर्म (= अविद्या) का दूसरा । जिन्होंने उक्त रहस्य का समझकर उसकी व्याख्या की है उन मनीषियों से हमने ऐसा सुना है ।

जो कर्म और ज्ञान का एक साथ जानता है दोनों मार्गों के सामग्र्य का समझता है वही कर्म द्वारा अपनी आत्मा को नीचे गिरानवाले तत्त्वा पर विजय पाकर (मृत्यु तीर्त्वा) अपने शाश्वत अमृत-स्वरूप का अनुभव करता है ।

२०३ अने । मय सुपथा राप्ते अस्मान्

विश्वामि देव वयुनामि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो

भूयिष्ठां ते ममर्चितं मिधेम ॥१८॥

हे जीवन-मार्ग का दिशानवाले देव ! हमका सम्भाग मेरे मेरे सस्य जिससे हम आत्म-मपत्ति अथवा आत्महान्य का पा करें । आप हमारे मय अग्नि-सुरे कर्मों को जागते हैं । कुटिलता में युक्त जो हमारा पापाकरण है उसका हमसे दूर कर दीजिये । हम बार-बार आपका नमस्कार करते हैं ।

मेनोपनिषद्

२०४ माहं ब्रह्म मिराकृत्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत ।

अनिराकरणमस्तवमिराकरणमस्तु ॥ (गान्धिपाठ)

तू आत्मा का रयी और शरीर को रख समस्त
 बुद्धि को सारथि ज्ञान और मन का लगाम समस्त ।
 मनीषी लोग इन्द्रियों का थोड़े और विषयों का उनका मांग कहते हैं ।
 वे इन्द्रिय और मन से युक्त आत्मा का भोक्ता कहते हैं ।
 जो मनुष्य विवेक-शील और सदा संयत-चित्त रहता है
 उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में रहती हैं जैसे अच्छा पाइ मारपी कअधीन
 रहते हैं ।

जो विषयशील बुद्धि-सारथि से युक्त

और मन का संयत रस्नवासा होता है ।

वह जीवन की यात्रा को समाप्त कर

व्यापक परमात्मा के परम पद का प्राप्त कर लेता है ।

२१२ उत्तिष्ठत जायत प्राप्य वरान्निवाधत ।

क्षुरस्य घारा निशिता क्षुररयया ।

दुर्गं पथस्तत्कथयो वदन्ति ।

(११३।१४)

(हे भजान स प्रसन्न संगी !) उठा जागा

और धष्ट जनों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करे ।

जिम प्रकार छुरे की धार तीव्र हो जाती है और छई नहीं आ सकती,

बुद्धिमान् पुरुष आत्म ज्ञान के मार्ग को

उसी प्रकार दुर्गम बतलाते हैं ।

२१३ पराङ्मुख तानि व्यतुण्णस्ययम्भू

स्तस्मात्पराङ् पश्यति नागतरामन् ।

कञ्चिद्वीर्यं प्राप्यगामानमैस

राजतबधुरामृतत्वमिच्छन् ।

(१११)

परमात्मा ने इन्द्रियों को स्वभाव से बहिर्मुख बनाया है ।

दृशीन्द्रिय मनुष्य बाहर का देखता है मगर अन्तर की ओर नहीं ।

कोई बिरला पार पुण्य हो इन्द्रियों का गर्वम करके

अमृतत्व को चाहता हुआ अगती भन्तरात्मा का श्रवण है ।

अर्थात् कोई विरले धीर पुरुष ही आत्म-परीक्षण अभवा आत्म चिंतन में प्रवृत्त होते हैं ।

२१४ पराश्र कामाननुयन्ति वासासु
ते मृत्योर्यमि विततस्य पाशम् ।

अथ धीरा अमृतत्वं विवित्वा
ध्रुवमध्रुवज्विह म प्राययन्ते । (२।१।२)

मूढ़ लोग ही बाह्य विषयों के पीछे लगे रहते हैं
वे मृत्यु अर्थात् आत्मा के अध-पतन के विस्तृत जाल में फँसे जाते हैं ।
परन्तु विवेकी लोग अमृतत्व (अपने द्वादशतत्त्व स्वरूप) का जानकर,
अध्रुव (= अनित्य) पदार्थों में नित्य सत्त्व की कामना नहीं करते
हैं ।

मुण्डकोपनिषद्

२१५ सत्येन सम्यस्तपसा ह्येव आत्मा
सम्यक्तामेन प्रहृद्यर्थेन नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति धृता क्षीणबोधाः । (३।१।५)

यह आत्मा (अथवा परमात्मा) सत्य तप सम्यग्ग्यान और प्रहृद्य
से ही प्राप्त किया जा सकता है । जिस दासहीन यति (= संयत जीवन
व्यतीत करनेवाले) देखते हैं वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा इसी शरीर के
अन्दर बसता है । अर्थात् मनुष्य अपने अन्दर ही अपने विगुण स्वल्प
अथवा परमात्मा के दशन कर सकता है ।

२१६ सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन यथा वितता देवयानः ।
यनाक्रमन्त्युपयो ह्याप्तवामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधामम् ॥ (३।१।६)

सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं
देवताओं के विचरण का मार्ग सत्य में ही बिस्तृत है ।

पूणकाम ऋषिजन सत्य द्वारा ही उस पद को प्राप्त होते हैं
जहाँ सत्य का वह परम निधान विद्यमान है ।

२१७ यं यं लोकां मनसा संविभाति

विशुद्धसत्त्वं कामयते याश्च कामान् ।

तं तं लोकां जयते ताश्च कामां

स्तस्मादात्मन ह्यर्घ्येद् भूतिवामः । (१।१।१०)

जिसका अंताकरण शुद्ध है पापा में रहित है ऐसा आत्मवत्ता मन में
जित-जित लोक (अर्थात् उत्कृष्ट अवस्था) की भावना करता है और जित
जित कामों (अर्थात् प्राप्त्य आवश्यकों) को चाहता है वह उस-उस लोक
को और उन आवश्यकों का प्राप्त कर लेता है । इसलिए जो अपना बन्धुमान
चाहता है उसे आत्मप्रेप्ता की अवस्था या उपासना करनी चाहिए ।

तन्निरीय उपनिषद्

२१८ आषाढ का वीसान्त उपदेश

वेदमनूष्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति—

सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्ता प्रमद । माचार्याय प्रियं
धनमाहृत्य प्रजातन्त्रं मा ध्यवच्छेत्सी ।

शर्यान् प्रमदितव्यम् । धर्मान् प्रमदितव्यम् । कुतूहलान् प्रमदितव्यम् ।
भूतान् प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाम्प्यं ग प्रमदितव्यम् । देवपितृणां
याग्यां म प्रमदितव्यम् ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । धर्मिण्यदेवो भव ।

धाम्यनयानि धर्माणि तानि सेवितव्यानि मो इतराणि । धाम्य
स्मार्त्तं मुचरितानि तानि त्यजोपास्यानि, मो इतराणि । य के आत्मवृद्धे-
योसा आचाराः तेषां त्यजताम प्रवर्तितव्यम् ।

मथुरा देवम् । मथुरादेवम् । विजा देवम् । हिंसा देवम् । मित्रा
देवम् । राज्ञा देवम् ।

अथ यदि ते कमबिचिक्रिस्ता वा वृत्तबिचिक्रिस्ता वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्गिनो युक्ता आयुक्ता भस्त्रा यम्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेयाः ।

एय आदेशः । एय उपदेशः । एया वेद्योपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु घतदुपास्यम् ॥ (१।११)

प्रिय स्नातकवर्ग ! विद्या-समाप्ति के अनन्तर आप एक नवीन जीवन में प्रवेश कर रहे हैं । उस जीवन की यात्रा में आप जहाँ भी रहें इस उपदेश का स्मरण रखिये ।

मत्स्य यासिये । अपन वृत्तव्य का पालन कीजिये । स्वाध्याय स भुंज न माश्निये । अपन विद्यामन्दिर की उन्नति के लिये यथाशक्ति सहायता करते हुए अपन गृहस्थधर्म का पालन कीजिये ।

मत्स्य यम आरम्भस्याण तथा समृद्धि के माग स विचिन्तित न होश्ये । उसमें प्रमाद न कीजिये । स्वाध्याय और प्रवचन द्वारा अपने ज्ञान का वृद्धि करते रहिये और विद्या-प्रचार में तत्पर रहिये । भेदों और पितरों के प्रति अपन वृत्तव्य का गंगा ध्याम रखिये ।

माता पिता गुरु तथा अतिथि में पूज्य वृद्धि रखिये ।

जो धष्ट कर्म हैं उन्हींका अनुसरण करिये । हमारे जो अच्छे आचरण हैं उन्हींका अनुकरण कीजिये । अन्यथा नहीं । जो विद्वान् हमारे भी मान्य हैं उनका उचित सम्मान कीजिये ।

दूसरों की आर्थिक सहायता करना आपका प्रथम वृत्तव्य है परन्तु वह सहायता धन से न कि अथवा प्रगल्भता से नम्रता से न निरर से और महानुभूति तथा प्रेम से करनी चाहिये ।

यदि किसी आपका अपन वृत्तव्यावर्तन या सदाचार के गर्व में गदेह उपस्थित हो ता जो विचारणीय तत्त्वों वृत्तव्यरक्षण ज्ञान स्वभाव परमार्थ विद्वान् हैं उनको गंगा में उन्मेषा हातर आना गमापान करिये और उनका आचरण और उन्मेष का अनुसरण पाजिये ।

यही हमारा भाव है प्रति भक्तिम आगे है यही उन्मेष है, यही वेद का रहस्य है यही विद्या है । इसी ज्ञान से आन भविष्य जीवन में मन्त्र गन्ध आन समुक्त रखिये ।

२१९. रसो व स । रसं ह्येवायं सग्न्यामन्दी भवति । को ह्येवान्यात्
सः प्राप्यात् ? यदेव भाषाश आनन्दो न स्यात् । एव ह्यवान्भवाति ॥ (२१७)

यह मूल-उत्तरव रूप भगवान् रसमय या रस-स्वरूप है । उसी रस को
पातर मनुष्य (या प्राणि-मात्र) आनन्द या अनुभव करता है । यदि वह
आनन्द को भाति सबत्र आठ प्रस आनन्दमय मृष्टतरव न हाता ता कौन
ध्यान और प्राण-रूप त्रिधाओं से युक्त जीवन-मात्र में आनन्द का
अनुभव करता । वास्तव में यही तरव प्रत्येक प्राणी में आनन्द का मूल
रूप है ।

२२० आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चम ॥ (२१९)

अपनी अंतरात्मा में निवास करनेवाले ब्रह्म के आनन्दमय स्वरूप का
पहननवाले ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् के लिए कहीं से किसी भी भय नहीं होता ।
अर्थात् वह सबथा निर्भय स्थिति का प्राप्त कर लेता है ।

२२१ यथा या इमानि भूतानि आपन्ते । येन भातानि जीवन्ति ।

यत्प्रयत्यभिर्भविष्यन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तत्र ब्रह्मति (२२०)

जहां से वे समस्त गन्तव्य उत्पन्न होते हैं

उत्पन्न होकर जिगमे आधर में चलमान रहते हैं

अंत में जिसका प्राप्त होते हैं जिसमें लीन हो जाते हैं

उगीका जानन की इच्छा करा ।

यही सा 'ब्रह्म' है ।

छान्दोग्यापनिषद्

२२२ तदा यमस्कन्धा-यता-प्यमर्षं दानमिति प्रथमः, तप एव
उत्तमः, ब्रह्मचार्यचार्यपुरावासी सुत-योऽन्तमहत्तमानमाचार्यबुद्धेऽन्तमार
यम् (२२३११)

यमं च राग्य (५ भाग) तीन है

यम अन्तर्गत और दा-मह प्रथम स्थान है

सम अर्थात् ब्रह्महिता दुर्गा मन्त्र २

धन और समय का जीवन व्यतीत करता हुए

गुरुकुल में वसति होकर विद्या-ग्रहण तीसरा स्वरूप है ।

२२३ यो व भूमा तत्सुख ।

नाल्पे सुखमस्ति ।

भूमेव सुख । भूमा त्वेव विजितासितम् ॥ (७।२।१)

जो विशाल है महान् है वही सुख-रूप है ।

अल्प में लघु में सुख नहीं रहता ।

निस्तन्देह महान् ही सुख है ।

इसलिए महान् का ही

विशेष रूप से जानन की इच्छा करनी चाहिए ।

२२४ यो व भूमा तदमृतम् । मय मरुत्वं तन्मृतम् ॥ (७।२।१)

जो महान् है वही अमृत है साक्षर है

जो लघु है वह मृत है विमाद्य-शील है ।

२२५ आहारशुद्धी सत्त्वशुद्धिः । सत्त्वशुद्धी ध्रुवा स्मृतिः ।

स्मृतिसम्भ सवर्णयोनां पिप्रमोक्ष ॥ (७।२।२)

आहार की (= इंद्रिय द्वारा ग्रहण किया गए विषयों की) शुद्धि हान पर सत्त्व (= अतःकरण) की शुद्धि होती है । सत्त्व का शुद्धि हान पर ध्रुव अर्थात् ग्यायी स्मृति का लाभ होता है । उस स्मृति के लाभ से (अर्थात् सदा जागरूक अमूर्त ज्ञान की प्राप्ति से) मनुष्य का समस्त प्रियमा शुद्ध आती है अर्थात् जीवन की समस्त उलझनों का समाधान हो जाता है ।

बृहदारण्यकउपनिषद्

२२६ असतो मा सद् गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

मत्सोर्मांस्त गमय ॥

(१।३।८)

हूँ मरे आशुतव ।

मृत अज्ञान से सत्य की ओर हो जाऊँ

मग अधकार से प्रकाश की ओर हो जाऊँ

मुक्त मृत्यु (= अपूर्ण जीवन) न अमृत (= पूर्णता) की ओर लक्षित ।

२२७ अमृतस्य नाशास्ति विज्ञेनेति ॥ (२।४।२)

ममूष्य वित्तं न धनं न अमृतत्वं नैव पूर्यमानं जीवन्
की भांति नहीं कर सकता ।

२२८ न वा अरे सबस्य कामाय सय प्रियं भवति ।

आत्मनस्तु कामाय सय प्रियं भवति ।

आत्मा वा अरे इष्टस्य श्रोतव्यो मन्त्रस्यो

निबिड्यासितस्यो मन्त्रस्य ।

आत्मनो वा अरे वर्णनं श्रवणं मनसा

वित्तानमेवं सर्वं विहितम् ॥ (३।४।५)

देगा मन्त्र न कोई भी पदार्थ अपने ही रूप में प्रिय नहीं होता ।
आत्मा की कामना के लिए ही सबकोई प्रिय होता है । इन्द्रिय, अर्थ
मन्त्रस्य ! आत्मा को ही अपने ही स्वरूप को, दर्शना चाहिए गुणना
आदि मनन करना चाहिए और विचार विचार करना चाहिए । आत्म
स्वरूप को ही अपने श्रवण मनन और विचार में बिना किसी माध्यम
विहित है जाना है ।

द्वेनादयस्तपोपतिपद

२२९ यदा चमयशब्दानं वेष्टयिष्यन्ति मानसा ।

तदा चैवमदिताय सुखस्यासौ भविष्यति ॥ (१।०)

जब मनुष्य आकाश का समस्त के समान रूप में तब मनुष्य
का परमेश्वर के नाम के विना ही दुःख का भोग है। समस्त । अर्थात्
विश्व के मूलतत्त्व-अवस्था परमात्मा को बिना ज्ञान रूप का भोग जाना
नहीं सम्भव है जैसे कि आकाश को समस्त के समान रूप में जाना ।

नारायणोपनिषद्

२३० यथा पुष्पस्य सत्रुष्णिनस्य भूराद् गन्धा वाति,

एव पुष्पस्य कर्मणो भूराद् गन्धो वाति ॥ (२।११)

जैसे फूल हुए वृक्ष की सुगंध दूर-दूर तक फैल जाती है वैसे ही पवित्र कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक पहुंच जाती है ।

२३१ सत्यं परं परं सत्यं ।

सत्येन न सुवर्गास्तोकाश्च ध्वजन्ते कदाचन ।

सतां हि सत्यं ।

सत्मात्सत्यो रमन्ते (३।७८)

मरत्य सर्वोत्कृष्ट है आ सर्वोत्कृष्ट है वह सत्य-स्वरूप है ।

जो सत्य का आश्रय लेते हैं वे स्वर्ग से आत्मोत्थान की स्थिति में पहुँच नहीं सकते ।

सत्पुरुषों का स्वरूप ही सत्य-मय होता है

इसलिए वे सदा सत्य में ही रमण करते हैं

मुक्तिकोपनिषद्

२३२ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां बहस्तो वासना सरित् ।

पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभं पथि (२।५।६)

मनुष्य की वासनाओं की नदी के शुभ और अशुभ दो मार्ग हैं । मनुष्य का चाहिए कि यह पूरा प्रयत्न करे उस शुभ मार्ग में ही प्रवृत्त रहे ।

२३३ हस्तं हस्तेन तस्मीदृशं बन्धस्ताम्विधूय च ।

अङ्गायङ्गं समाकृत्य अपराधी स्वयं मनः (२।१६)

प्रार्थना जावनपात्रों के संबंध में जागरूक और सावधान मनुष्य का मनप्रयत्न इसका है कि वह पापों का पीछा करने वाले लोगों से दानों का पीछा करे और समस्त पदार्थों से तटस्थ रहकर मन का जोर दे अपने मन में रखे ।

चौथा अध्याय

वैदिक परिशिष्ट

निरुक्त

वेद के छ लक्षा म यास्वमुनि-कृत निरुक्त का प्रयोग म्यान ह । पद्यों के निबन्धन द्वारा वेद के मंत्रों के धर्म-ज्ञान में सहायता देना ही इसका मुख्य विषय ह । इसका समय जगमग १०० ई० पू० समझा जाता ह । इस महत्त्व के ग्रन्थ म कुछ अमूल्य गुणांकित नीचे दिय जात ह ।

२३४ मय स्वाधोरपराधो घबेनमन्थो म
पापति । पुस्वापराध स भवति । (१।१६)

अथा मगय स्तम्भ या ठठ को नहीं देतता और टकराकर चोट खा जाता ह तो इसमें उमोका अपराध होता ह म्यागु का नहीं ।

२३५ स्वागुरय भारहार विलाभु
रपीत्य वेद म विज्ञानाति योऽप्यम् । (१।१८)

जो वेद का पढ़कर उमो मर्य का नहीं जानता वह बात में लगे हार केवल स्वाग या स्तम्भ के समान ह ।

२३६ यद् गृहीतमपिनातं निगबेनव दप्यते ।
मनमाविष दुर्कंधी म तज्जगन्ति बहिषित् ॥ (१।१८)

जो पढ़ा किया हुआ दास्य अप्र ज्ञान के बिना केवल पाठ-मान म पढ़ा जाता है वह प्रकाश और प्रकाश का नहीं तथा अर्थात् निरर्थक ही रहता है बने दास्य अग्नि के बिना मूला ईगन नहीं रहता ।

२३७ विद्या ह व बाह्यमपि ज्ञानम

गोपाय मा य शोबयिष्येऽहमस्मि ।

असूयकायानुजयेज्यताय

न मा ब्रूया वीर्यवती तया स्याम् ॥

य मातृणस्यवितथेन कर्णा

वकुक्ष कुक्षमृत सं प्रयच्छन् ।

तं भय्येत पितर मातर च

तस्म न ब्रूयेत्कस्तमश्चनाह ॥

अध्यापिता य गुरुं मात्रियन्ते

विप्रा वासा मनसा कर्मणा या ।

ययव ते न गुरोर्मोजनीया

स्वर्धन तास भुनक्ति भुत तत् ॥

यमेव विद्या शुचिमप्रमत्तं

मेघाबिनं ग्रहणयौपपन्नम् ।

यस्ते न ब्रूयेत्कस्तमश्चनाह

तस्मै मा ब्रूया निषिषाय ब्रह्मण ॥ (२१४)

विद्या विद्वान के पास आई और उसन कहा—

तुम मेरी रक्षा करा म तुम्हारी निधि हूं

निन्दक कुटिल और अमयत के लिए मुझ न दो

तमी न शक्ति और शामय्य म मुक्त रह सकती हूं ।

जो बिना पीडा देते हुए और मानो अमृत का सेवन करते हुए

सत्य-रूप जान म काना को खाल्य ढता ह

शिष्य का वस्तव्य ह कि उमका पिता और माता समझ

और कभी भी उगमे द्रोह न करे ।

जो पढ़ाय गए शिष्य मन-वचन-कर्म म

गुरु का भावर मही बरने ह

न ता के गुरु के स्नह और कृपा क पात्र हान ह

और न उनका विद्याध्ययन मफल होता ह ।

पाचवा अध्याय

१

वाल्मीकिरामायण

आदिकवि महामुनि वाल्मीकि द्वारा रचित वाल्मीकिरामायण का महत्त्व संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति दोनों की दृष्टि से अत्यधिक है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों की मर्यादा की स्थापना में इसका बड़ा हाथ रहा है। संस्कृत के समस्त कवि इससे प्रभावित होत रह रहे हैं। स्वभावतः यह सुन्दर उदात्त विचारों से परिपूर्ण है। नीचे के कुछ महत्त्व के सुभाषित इसी ग्रन्थ से दिये जाते हैं।

२४१ मातुः सत्यं हि परमं धम धमविदो जनाः ।

(२।१४।)

धर्म का जाननेवाले लोग सत्य का ही सर्वोत्कृष्ट धर्म बतलाते हैं।

२४२ दुर्लभं हि सदा सुखम् ।

(२।१८।१३)

मनुष्य सदा सुखी ही रहे, यह दुर्लभ है।

२४३ रामो निर्माभिभाषते ।

(२।१८।२०)

राम का यह स्वभाव है कि वह एक बार जिस बात का कह दत्त है फिर उसका प्रतिपादन नहीं करता।

२४४ गुरोरप्यवतिष्ठत्य कार्यवापमजानत ।

उत्पद्य प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ (२।१९।१३)

अभिमाणी कार्य-अकार्य का न जाननेवाला और उल्टे भाग पर ध्यान देने वाला गुरु को भी दण्ड देना आवश्यक होता है।

२५६ आत्मानं नियमस्तस्तु कर्षयित्वा प्रयस्ततः ।

प्राप्यते निपुणर्ममो न मुक्तास्तभते मुक्तम् ॥ (३।९।३१)

बुद्धिमान् लोग प्रयत्नपूर्वक विभिन्न प्रकार के नियमों से अपनेका हथ करके (अर्थात् सयत जीवन व्यतीत करते हुए बन्धों का झलकर) जीवन के सुखमूल तथा वास्तविक मुक्त के साधन धर्म का प्राप्त करते हैं। सुख से मुक्त की प्राप्ति नहीं होती ।

२५७ अमागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।

आपदाशङ्कमानेन पुण्येण विपदिभता ॥ (३।२४।१६)

कस्याण बाह्यवाले बुद्धिमान् मनुष्य को बाहिए कि वह आमवाली आपतियों की शका करता हुआ उनके आने से पहले उनका प्रतीकार करे ।

२५८. कर्म लोकाविष्टं तु कुर्वाण क्षणवाचर ।

तीक्ष्णं सवजनो हस्ति सर्पं बुष्टमिवागतम् ॥ (३।२९।४)

अयि रामस (=सर) ! लोक के लिए हानिकारक कर्म करनेवाले क्रूर मनुष्य का सबकोई आये हुए बुष्ट सर्प के समान मार डालन ह । (सर के प्रति राम का वचन)

२५९ न तिरं पापकर्मणि क्रूरा लोकाबुमुप्सिता ।

ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति क्षीणमूला इव वृक्षाः ॥

(३।२९।७)

पाप कर्मवाले क्रूर मनुष्य लोक द्वारा बुगुणित होकर, नष्ट हुई जड़ों वाले वृक्षों के समान ऐश्वर्य का पाकर भी वेरतक स्थित नहीं रहते । अर्थात् वे बहुत शीघ्र नाश का प्राप्त हो जाते हैं ।

२६० न घिरातप्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।

सविषाणामिवाप्तानां भुक्तानां क्षणवाचर ॥ (३।३०।९)

हे राक्षस ! खाय गए विष मिल अश्वों के समान लान में पाप-कर्मों का फल क्षीप्त ही मिल जाता है । (स्वयं प्रति राम का वचन) ।

२६१ परवाराभिमर्शास्तु मान्यत्पापतर महत् ।
(३।३८।३०)

दूसर की स्त्री से अनुचित सम्बन्ध से बड़ा पाप दूसरा नहीं है ।

२६२ स भारः सौम्य भक्तव्यो यो नर नावसारयेत् ॥
तवन्नमपि भोक्तव्यं जीयते यदनामयम् ॥
(३।५०।१८)

हे सौम्य ! उसी भार को उठाना चाहिए जिससे मनुष्य का कष्ट न हो ।
उसी भक्त का खाना चाहिए जो रोग का उत्पन्न किये बिना पच जाय ।

२६३ यत् कुत्सा न भवेत्सर्वो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम् ।
घरीरस्य भवेत्सर्वं कस्तत्त्वम समाचरेत् ॥
(३।५०।१९)

जिस काम का करके न तो घम होता है न कीर्ति और न स्थायी यश,
उसका घरीर को बघ्ट हाता है उसका बर्तन करगा ? अर्थात् कोई नहीं ।

२६४ मुमुक्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥
(३।५१।१७)

जो मरन चाहते हैं उन सबका जो पथ्य है वह सब रोचते नहीं जाय ।

२६५ उत्साहो बलवानाय मास्त्युत्साहात्परं यत्नम् ।
सोत्साहस्य हि लोभेषु न किञ्चिदपि कुलभम् ॥
(४।१।२१)

आय ! उत्साह न बड़ा बल हाता है
उत्साह न बड़ा दूसरा यत्न नहीं है
गया में उत्साह-मग्न मनुष्य के लिए

कोई भी वस्तु तुल्य नहीं है ।

२६६ कुक्षित मुक्षितो वापि सस्मृतित्यं सखा गति ।

(४१८।४०)

कुक्ष में अथवा सुरा में, मित्र ही सदा मित्र का सहारा होता है ।

२६७ अयेळो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।

प्रमस्ते पितरो भैया धर्मं च पवि वर्तमानं ॥

(४१८।१३)

धर्म के मार्ग पर चलनेवाले के लिए अप्यष्ट भ्राता पिता, और विद्या का दनवाला गुरु ये तीनों ही पिता हैं ।

२६८ अविमामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।

आत्मा संभृत्य यो हन्ति स लोके पुण्यायमः ॥

(४१९।७१)

अपने पाम आये हुए प्रार्थी लोगों की तथा पूर्व में अपना उपकार करम-
भासा की आशा की उसकी पुष्टि का कथन दकर जो मार देता है वह संसार
में सबसे नीच व्यक्तित्व है ।

२६९ गोप्ने चेत सुरापे च शीरे भग्नघते तथा ।

निष्कृतिर्विहिता सञ्जिह्वं कृत्वाग्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

(४१९।१२)

गो की हत्या करनवाला सुरा-पान करनेवाला शीर और भिन्न-
घत मर्द्द हा चुका है इनके लिए मत्स्यपुर्यों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है ।
परन्तु कृत्वाग्ने क विषय में कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

२७० न फण्डिन्नापराध्यति ।

(४१९।११)

विन्मीने भी कोई अपराध नहीं है। ऐसी बात नहीं है ।

२७१ अनिवर्त्तं च शक्यं च मनसश्चापराजम् ।
कायसिद्धिकराप्याहुः ॥

(४।४९।६)

निर्वर्त्त (=म्लानि) का न हाना ददाता आर मन में पराजय की नाशना का न हाना य काय की सिद्धि करनेवाले गुण ह ।

२७२ न विपादे मनः काय विपादो दोषवत्सरः ।
विपादो हस्ति पुरुषं वालं क्रुद्ध इवोरगः ॥ (४।६४।९)

मन म विपाद का नहीं लाना चाहिए,
विपाद म अत्यधिक दोष रहत ह ।
क्रुद्ध सप जमे बन्धे पर घात करता ह
एस ही विपाद मनुष्य पर घात करता है ।

२७३ अनिवर्त्तं धियो मूलमनिर्वर्त्तं पर मुक्तम् ।
(५।१२।१०)

अनिर्वर्त्त (=उत्साह) मूढमी का मूल है
अनिर्वर्त्त उत्प्लुष्ट मुक्त ह ।

२७४ विनाशे बहुषो दोषा जीवन्म्राज्योति भवन्म ।
(५।१३।४५)

विनाश में बहुत-से दोष रहत ह । जीवन क द्यत हुए ही मनुष्य भलाई
को कल्याण को पाता ह ।

२७५ पिगस्तु परवश्यताम् ।
(५।१३।५०)

परवश्यता को परार्थीनता को चिन्तार ह !

२७६ दुःखमात्रं भवेत्प्रोक्तिः सोदृढं नास्त्वदुच्यते ।
(५।१३।५०)

जो आँख के सामने रहता है उसमें प्रीति होती है। जो आँख के सामने नहीं है उसके साथ सौहार्द नहीं रहता।

२७७ कस्याणी यत्त गाभेयं लौकिकी प्रसिभाति माम् ।

“एति जीवस्तमानस्यो नरं वयशतावपि” ॥

(५१३४६)

“जीते हुए मनुष्य को सौ वर्ष बाद भी आनन्द अवश्य प्राप्त हो जाता है” यह लौकिक कहावत मुझे मली और ठीक ही प्रतीत होती है।

२७८ आनुशस्यं परो धम ।

(५१३८१९)

आनुशस्य अर्थात् मानवता का समादर परम धर्म है।

२७९ न साम रक्षस्तु युगाय कल्पते

न दानमर्घोपचितेषु युज्यते ।

(५१४१३)

फूर मनुष्यों पर साम अर्थात् मेरु की नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। न्नी प्रकार धनसम्पन्न लोगों के प्रति दान की नीति का कोई उपयोग नहीं रहता।

२८० कोयं न गच्छन्ति हि सत्त्वन्तः ।

(५१५२१६)

सत्त्ववान् मनुष्य प्रोष नहीं करते।

२८१ बाष्पाबाध्य प्रकुपितो न विजानाति कहिचित् ।

नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नाबाध्यं विद्यते वयचित् ॥

(५१५५५)

क्रुद्ध व्यक्ति कभी भी बाध्य (बहुन योग्य) और अबाध्य (न कहने योग्य) का विवेक नहीं करता। क्रुद्ध मनुष्य के लिए न तो अक्राय (न बरन योग्य कार्य) हाता है और न अबाध्य।

२८२ माम्निरम्नो प्रवर्त्तते । (५।५५।२२)

अग्नि अग्नि का नहीं जलता है ।

२८३ निष्साहस्य बीनस्य शोकपर्याकुलस्तमनः ।
सर्वार्था व्यवसोदन्ति व्यसनं चाभिगच्छति ॥ (६।२।६)

उत्साहहीन दीन और घाम से व्याकुल व्यक्ति के सब काम बिगड़ जाते हैं और वह स्वयं कष्ट को प्राप्त होता है ।

२८४ मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः । (६।६।५)
मनीषिणा का कथन है कि विजय या सफलता की जड़ मन्त्रणा या विचार-विमर्श में होती है ।

२८५ जानामि शीलं शास्त्रीनां सवलोकेषु राक्षसः ।
धृष्यन्ति व्यसनेभ्येते शास्त्रीनां ज्ञातव्यं सदा ॥ (६।१६।३)

अयि राक्षस ! सारे संसार में भाई-बन्धुआ के स्वभाव का मैं जानता हूँ । ज्ञाति के भाग ज्ञातिवाला के कर्जों में सदा प्रमत्त हुआ पड़ते हैं ।
(विभीषण के प्रति रावण का वचन)

२८६ यथा पुष्करपत्रेषु पतितस्ताम्रविभ्रयाः ।
तद्वत्तमभिगच्छन्ति तपामार्गेषु सौहृदम् ॥ (६।१६।११)

जैसे कमल के पत्रों पर पड़ी हुई जल की बूंद नहीं टकरती वैसे ही अनाथ लोगों में मित्रता स्थिर नहीं होती है ।

२८७ आकाररुदाद्यमानाप्रि न दक्षयो विनिगृह्यन्तुः ।
वत्सादि विवृणात्यय भावमगतगतं नृणाम् ॥ (६।१७।६६)

जिममें सत्य नहीं है वह धर्म नहीं है
जिममें छल मिला हुआ है वह सत्य नहीं है ।

२९७ तपो हि परमं श्रेयं सम्मोहमितरमुत्तमम् ।

(७।८।१९)

तप (=ब्रह्मसहिष्णुता) ही परम कल्याण को करनेवाला होता है । तप से रहित जा सुख है वह तो बुद्धि के सम्मोह को उत्पन्न करता है ।

२

महाभारत

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकिरामायण के बाद महाभारत का स्थान है । महामुनि इष्टमहायान व्यास इसके कर्ता कहे जाते हैं । यह बड़ा विशालकाय ग्रन्थ है । एक प्रकार से हिन्दु-धर्म का यह विषय-कोष है । हिन्दु धर्म की समस्त प्रवृत्तियाँ का मूल ग्रन्थ इसमें मिल जायगा । वाल्मीकि-रामायण के समान ही संस्कृत कवि इसके भी गुणों का गान करते हैं । दशों के दो प्रसिद्धतम अंगों—विदुरनीति और भगवद्गीता—में मोक्ष के दो मार्गों (क ल) में कुछ पुनः पुनः सुभाषित-रत्न दिये जाते हैं ।

(क) विदुर-नीति

पण्डित के लक्षण

२९८ आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मगित्यता ।

यमर्थाप्रापवर्त्यन्ति स य पण्डित उच्यते ॥ (१।२०)

यस्य कृत्यं न बिभ्रन्ति शीतमुष्ण भयं रति ।

समृद्धिरसमृद्धिर्षा स वै पण्डित उच्यते ॥ (११२४)

नप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नञ्छन्ति गोचिंतुम् ।

आप्तुं च न मुह्यन्ति नरा पण्डितबुद्धयः ॥ (११२८)

निश्चित्य यः प्रक्रमते मान्तरवसति कर्मणः ।

अवगम्यनालो वश्यात्मा स च पण्डित उच्यते ॥ (११२९)

न हृष्यत्प्राप्तमसम्माने नावमानेन तप्यते ।

गादो ह्रस्व इवालोम्यो यः स पण्डित उच्यते ॥ (११३१)

अर्थ महान्तमासाद्य विद्यामन्वर्यमय वा ।

विधरत्यसमुद्रद्वो यः स पण्डित उच्यते ॥ (११६५)

अपन स्वल्प का ज्ञान सत्कार्यों के लिए उद्योगशील होना सन शीलता और धर्माचरण में तत्परता—इन गुणों के कारण जो बन्दी अपन जीवन के लक्ष्य में व्युत्त नहीं होता मग उसकी ओर दृष्टि ही जाता है उसीका पण्डित कहते हैं ।

सर्दी गर्मी मय अनुराग समृद्धि अथवा असमृद्धि (= दरिद्रता)—य मय जिसके बाय में बिच्य नहीं डालने वही पण्डित कहलाता है ।

पण्डितों की बुद्धि रखनवाय मनुष्य न तो अप्राप्य वस्तु की दृष्टि परते हैं न नष्ट हुई वस्तु के लिए शोक करत हैं और न विवशियों के धाम पर मोह का प्राप्त होने है ।

जो निष्पक्षपूर्वक बाय का प्राग्भ्य करता है बाय व दोष में नहीं गतता समय का धार्य नहीं जान देता और अपनना वग म रगता है उसीका पण्डित कहते हैं ।

जो अपन सम्मान पर फूट नहीं जाता तथा जनान्तर जान पर दुःख म मगन नहीं होता और जो विभिन्न परिस्थितियों म गगा से कुंठ के समान अग्रान्न उता है वही पण्डित कहलाता है ।

३०६ अर्पागमो मित्यमरोगिता च
 प्रिया च भार्या प्रियमाश्रिनी च ।
 वयस्य पुत्रोऽर्धकरी च ब्रिया
 यद् जीवन्लोकस्य सुखानि रामन् ॥ (१८७)

धन की प्राप्ति और सदा स्वस्थ रहना
 प्रिय तथा मधुरभाषिणी स्त्री,
 आमाश्वारी पुत्र और भन देनवाली ब्रिया
 हे रामन् ! इस श्लोक के य छ सुख ह ।

३०७ आरोग्यवानुष्यमविप्रवासा
 सङ्गिर्भनुष्यै सह संप्रयोग ।
 स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतमस्त
 यद् जीवन्लोकस्य सुखानि रामन् ॥ (१८४)

नीरोग होना ऋणी न होना प्रवासी न होना, सङ्गनों का साथ
 होना स्वाधीन भाजीबिका होना और भयरहित निवास होना—संसार
 के य छ (मुख्य) सुख ह ।

३०८ अष्टौ गुणा पुरुषं शोषयन्ति
 प्रज्ञा च कौत्स्य च वनं भुतं च ।
 पराज्मशब्दावहुभाषिता च
 वानं यथाशक्ति वृत्तशता च ॥ (११०४)

बुद्धि वृत्तीनता इन्द्रियमयम अध्ययन, नूरता मितभाषण दाबिन
 के अनुसार दान देना और बिन्ने हुए उपकार की मानना—ये आठ गुण पुरुष
 की दाभा को बढ़ाते ह ।

३०९. दाससयमो हि नृपते! सुदुष्परतमा मतः ।
 अयं वक्ष्ये विभिन्नं च न दास्य बहु भाषितुम् ॥ (२१०६)

हे राजन् ! वाणी का संयम अत्यन्त ही कठिन समझा जाता है । एसी बातें जो वास्तव में अशुभ भी हो और विविध भी बहुत नहीं कही जा सकती ।

(ख) भगवद्गीता

आत्मा की नित्यता

३१० न जायते म्रियते वा कदाचि
घ्राय भूत्वा भविता वा न भूय ।
अमो नित्यं शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(२।२०)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽप्यराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्मयानि सप्राप्ति नवानि देही ॥

(२।२०)

ममं छिद्यस्ति शस्त्राणि ममं बहति पावसाः ।
न धनं बलेद्यस्यपापो न शोषयति मायता ॥

(२।२१)

यह आत्मा न कभी जन्म लेता है न पसी मरता ।
मरवा न यह आत्मा होकर दुःखों का हानकाली है ।
यह भगवान् नित्य शाश्वत और पुरातन है
शरीर के नाश हो जान पर भी उसका नाश नहीं होता ।

जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों का छाटना
मरवाने कपड़ों का धोना कर लेता है

बने ही जीवात्मा पुराने धारीरों को छोड़कर
नये धारीरों को प्राप्त कर लेता है ।

इस आत्मा को न तो दास्य भाट सकते हैं
न इसका आग जमा सकती है ।
न इसको जल गीला कर सकता है
न वामु मुसा सकती है ।

३११ तस्मादपरिहृमोऽहं न त्वं शोचितुमर्हसि । (२।२७)

इसलिए ऐसी बात के लिए, जो टापी नहीं जा सकती तुम्हें शोक नहीं
करना चाहिए ।

३१२ सभावितस्य चात्कीर्तिर्मरणावतिरिच्यते । (२।३६)

सम्मानित मनुष्य के लिए अपकीर्ति मरण से भी बुरी होती है ।

३१३ नेहाभिजन्मनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य घमस्य प्रायते महतो भयात् ॥ (२।६०)

कसम्यबुद्धि से कर्म करने के भाग में न तो प्रयत्न के बिना हानि की
आशंका होती है न किसी प्रकार का पाप या दोष प्राप्त होता है । इस
घर्म का थोड़ा अंश भी मनुभावना से किया हुआ छोटा काम भी मनुष्य
को बड़ा भय में डाल सकता है ।

३१४ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सद्गोप्स्त्वकर्मणि ॥ (२।४७)

तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है उसका फल मैं बिमूर्ख नहीं ।
इसलिए मैं तो कर्म-फल की भविष्यता का और न ऐमा करता हूँ अपना कर्म
घर्म को ही छोड़ दूँ ।

३१५ योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समस्त्य योग उच्यते ॥

(२।४८)

॥ अजन ! धर्म-कर्म में आसक्ति का छाड़कर मिद्धि और अमिद्धि में समान बुद्धि रखकर भीरु इस प्रकार याग में स्थित होकर बर्षों को पग। उपयुक्त समस्त-भाव ही योग कहा जाता है ।

३१६ बद्धो धारणमविच्छ । (२।४९)

तुम्हें बुद्धि में ही धारण सनी चाहिए ।

३१७ कृपणाः फलहेतवः । (२।४०)

पल का मामल रूपकर ही कर्म में प्रवृत्त होनेवाले एक प्रकार के दीन होते हैं ।

३१८ योगः क्लमसु कौशल्यम् । (२।५०)

योग भयात् मिद्धि और अमिद्धि में समस्त्य भावना ही कर्मों का विषय में कौशल या बुद्धिमत्ता है ।

३१९ स्थितधीर्मुनिरुच्यते । (२।५१)

प्रायः अवस्था में जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है अथवा नहीं होती पही मनि कहा जाता है ।

३२० एष हि यस्तद्विषयाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिव्यक्ता । (२।५२)

इन्द्रिया पर जिनका पूरा अधिभार होता है उसीकी बुद्धि प्रतिबिम्ब भयसा गुणिय हो गवती है ।

३२१ भयाद्भयमयाद् यत्ताज्ज्ञानयज्ञः परमाय । (२।५३)

अजुन ! उस यज्ञ की भयसा जिगणे करने में पन प्राप्ति इन्द्र की भयेभा होता है ज्ञान-या दृष्टान्त है ।

३२२ अज्ञानाभ्युपानयनं संशयात्मा विनश्यति ।

नार्थं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ (४।४०)

जो अज्ञानी है जो भ्रष्टा से रहित है और जो संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है । संशयात्मा मनुष्य के लिए न तो यह लोक है न परमोक । यह कभी सुखी नहीं हो सकता ।

३२३ उद्धरेवात्मनस्तमानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मनो ह्यात्मनो बन्धुरात्मनो रिपुरात्मनः ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मेवात्मना जितः ।

अमात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मेन शत्रुवत् ॥ (६।५-६)

मनुष्य को चाहिए कि जीवन में अपने सहारे से ही अपना उद्धार करे, अपने को हीन-भावना से (में दीन हूँ, हीन हूँ, कुछ नहीं कर सकता—इस भावना से) बचाय । मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु ।

जिसने अपने को (अपने मन तथा इंद्रियों को) जीत लिया है उसका आत्मा ही उसका बन्धु है । जिसका मन और इंद्रियाँ अपने वश में नहीं हैं उसका आत्मा ही उसके शत्रु के समान है ।

३२४ नहि बन्ध्यागृह्णन्कश्चिद्बुधो गतिं तस्त गच्छति । (६।६०)

हे अन्त ! भलाई करनेवाले की दुर्गति नहीं होती ।

एवी तथा आसुरी सप्त

३२५ अमयं सत्त्वसंदुष्टिर्निर्माणयोग्यवस्थितिः ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आश्रयम् ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्तयाग द्वास्तिरप्यनुमम् ।

दया भूतप्रेममोक्षपूर्व मार्गश्च हीरचापसम् ॥

तेज क्षमा धृतिः शौचमश्रोत्रो नास्तिमानिता ।

भवन्ति सम्पदं बभौमभिजातस्य भारत ॥

वम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पाश्व्यमेव च ।

अतान घाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ (१६।१-४)

मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं एक दबी दूसरी आसुरी ।
इन्हींकी गीता में त्रयश दबी संपद् और आसुरी संपद् इन नामों से कहा
गया है ।

उनमें से दबी संपद्वाले मनुष्य के लक्षण ये होते हैं—अभय बिभ्र
की पवित्रता ज्ञानयोग में तत्परता सात्त्विक दान इंद्रियों का संयम
निष्काम भावना से भगवद्भक्ति स्वाध्याय की प्रवृत्ति सृष्टिसहिष्णुता
शान्ति सरल स्वभाव अहिंसा सत्य अशोक सासारिक वस्तुओं में आसक्ति
का न होना दूसरे की निंदा न करना प्राणियों पर दया विषयों के लिए
शोक न होना मृदु-भाव बुरे काम के करने में लज्जा, चंचलता का न होना
तेज क्षमा धर्म पवित्रता अश्रोत्र और दुरभिमान से बचना ।

आसुरी संपद्वाले मनुष्य के लक्षण होते हैं—पाश्वर्ध धर्मोऽभिमान
क्रोध बढोरता और अज्ञान ।

३२६. त्रिविधं नरकस्यैवं द्वारं नागतमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा सीभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजत् ॥ (१६।२१)

काम क्रोध और मान नरक के ये तीन प्रचार के द्वार हैं । ये आत्मा
का नाश करनेवाले हैं । इसलिए मनुष्य इन तीनों का छोड़ दे ।

३२७. अदामयोऽप्य पुण्यो यो यच्छ्रद्धां स एव सः । (१७।१)

मह पुण्य अदामय है । इमर्त्या प्रयत्न पुण्य का स्वरूप उमरी यज्ञ
के मनुष्य ही होता है । अर्थात् प्रयत्न मनुष्य का ध्यस्तित्व उमरी यज्ञ
अथवा आत्मा में ही बनता है ।

३३१ स्वे स्वे कर्मभ्यमिरता संसिद्धिं लभते नरः । (१८।४५)

मनुष्य अपन-अपने कर्तव्य कर्म का उत्पत्ता के साथ करता हुआ
पूरा सफलता पा लेता है ।

३३२ अयान स्वयमो विगुण परममस्त्वमुच्छितात् । (१८।४७)

अपन धर्म का कुछ छुटि के साथ भी पापन अच्छी तरह से भी क्रिये
गए दूसरे के धर्म से वही अच्छा होता है ।

छठा अध्याय

भारतीय संस्कृति के विकास में जनधर्म और बौद्धधर्म की कई प्रकार में बहुत बड़ी देन है। दोनों धर्मों का साहित्य बड़ा विस्तृत है। जनधर्म का मौखिक धार्मिक साहित्य प्राचीन प्राकृत भाषा में और बौद्धधर्म का पालि भाषा में है। दोनों धर्मों के साहित्य में आत्मविश्वास चारित्र्यशुद्धि अहिंसा, लोक-कल्याण जैसी उदात्त भावनाओं का प्रमुखता दी गई है। नीचे दो भागों में हम क्रमशः उन्हींके साहित्य से कुछ सुन्दर और उदात्त विचार देते हैं। प्रथम भाग में सुविधा की दृष्टि से संस्कृत में ही सुभाषित दिये गए हैं और दूसरे में पालि भाषा में।

१

ज्ञानारण्य

[ज्ञानारण्य (मत्स्यपुराण रामचन्द्र-जैन-शास्त्रमाला) ग्रन्थ को जनधर्म में अच्छी मान्यता है। विचार और भाषा दोनों दृष्टियों में यह ग्रन्थ बड़ा मंदिर है। इसके लेखक श्री रामचन्द्राचार्य थे जिनका समय प्रायः सम्राट् अशोक के प्रारम्भ माना जाता है।]

३३३ प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रणम्य नमः ।

सम्यक्त्वस्वोपदेशाय सती मूर्ध्नि प्रणमते ॥ (पृ० ६)

सत्पुरुषों का उत्तम पापी दुमरा का जगान के लिए सम्यग्त्व के विवेक के लिए मान-कल्याण के लिए अन्न म धानि के लिए धीर ज्ञान में आत्मविश्वास के उपदेश के लिए प्रवृत्त हुआ करता है।

३३४ रत्नत्रयमनासाद्य यः साक्षाद् ध्यातुमिच्छति ।

सत्पुत्रं कुरुते मूढः स सम्यग्मतोत्तरम् ॥ (पृ० ११)

जो मनुष्य वस्तुतः रत्न त्रय (=सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य) को प्राप्त न कर ध्यान-भाग में अग्रसर होना चाहता है वह मूर्ख आकाश के फूलों में ब्रह्मा के पुत्र के लिये सेहरा (=मोर) बनाना चाहता है । भावार्थ—रत्नत्रय की प्राप्ति के बिना भित्त एकाग्र और शान्त नहीं हो सकता ।

३३५ तत्त्वहविः सम्यक्त्वं तत्त्वप्रख्यापकं भवेन्नानम् ।

पापकियानिबुत्तिश्चरित्रमुक्तं जिनैरेष्ये ॥ (पृ० ९१)

भगवान् जिनैन्द्र न तत्त्व विषयक हविः अथवा धृष्टा को सम्यग्दर्शन तत्त्व-विषयक विषय ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और पाप-जर्मों में निबुत्ति का सम्यक्-चारित्र्य कहा है ।

३३६ हिंसय दुर्गतेर्द्वारं

हिंसय दुरितार्थव ।

हिंसय नरकं घोर

हिंसय गहमं तमम् ॥

(पृ० ११९)

हिंसा (=दूरे का पीड़ा देना अथवा दूरे के व्यक्तिगत्य का अनादर) ही दुर्गति का द्वार है । हिंसा ही पाप का गमुद्र है । हिंसा ही घोर नरक है । हिंसा ही महान् अंधकार है ।

३३७ अहिंसय आत्माता-

हिंसयानन्दपट्टिम् ।

अहिंसय गतिं साध्वी

भीरुहिंसयं शाश्वती ॥

(पृ० ११५)

अहिंसा ही अमृत की माता है । अहिंसा ही आनन्द का माग है । अहिंसा ही उसम गति है । अहिंसा ही शाश्वती धी या योगिनी है ।

३३८ यत्किञ्चित्संसारे शरीरिणी दुःखसाकमयबीजम् ।

बीर्माग्यादि समस्त तद्विनाशमर्थं जयम् ॥ (पृ० १२०)

मंसार में प्राणियों के दुःख शाक ओर मय के मूल में आ कुछ दुर्भाग्य आदि हैं उन मयको हिमा में ही उत्पन्न हुआ समझना चाहिए ।

३३९ यः संयमधुरां घसत पयमासम्भ्य सयमी ।

स पासयति यत्नन वायन सत्यपादपम् ॥ (५० १०१)

आ समय से रहनवाला व्यक्ति धैर्य का सहारा लेकर समय का धुरा को धारण करता है वही बाणी के वन में मरत्य-रुही वृक्ष का यत्नपूर्वक रक्षा करता है । अर्थात् धैर्य और समय के बिना मनष्य मरत्य को रक्षा नहीं कर सकता ।

३४० यस्तपस्वी जटी मण्डो नमो वा भीवरावृत ।

सोऽप्यसत्य यदि द्यूते निन्धा स्यादस्यनादपि ॥ (५० १०६)

आ तपस्वी जटापारी सिंग मुंडाय हुए वस्त्रहान अथवा वस्त्रधारी हातें हुए भी असत्य बालता है वह चाटाल में भी पुरा है ।

३४१ एकतः सकल पापमसत्स्योत्थ ततोऽप्यत ।

साम्यमेव वदन्त्यापस्तुतायां धृतयास्तयो ॥ (५० १०६)

तुला (=तराजू) में एक बार समस्त पापों का और दूसरी बार असत्य में उत्पन्न हुए पापों का रखकर तालन पर आय पुण्य दोनों पा बराबर ही पतन है । अर्थात् असत्य भरेला ही समस्त पापों के बराबर है ।

३४२ प्रसन्नीप्रतपस्तानां गुणानां चन्द्रोत्तिदाम् ।

सघात घातपत्यव सृष्टप्युगित मया ॥ (५० १०७)

एक बार भी घाला हुआ असत्य पद्मों की फिराव में गमान निमग्न और उदात्त गुणों के समूह का नष्ट कर देता है । अर्थात् असत्य बचन एका मिलित होता है कि वह चंद्र-मद्ग निमग्न गंगा का भी मलिन कर देता है ।

३४३ गुणा गौणत्वमायास्ति याति विद्या विद्वन्मनाम् ।

‘और्ध्वेणाक्षीतयः’ पुंसां शिरस्यावधते पदम् ॥ (पृ० १२९)

आगे सरन से मनुष्या के गुण गौण हो जाते हैं अर्थात् उन्हें कोई नहीं पूछता विद्या निबन्धी हो जाती है और अक्षीति उनसे शिर पर पड़ रहने सेती है अर्थात् सर्वत्र उनकी बुराई हान लगती है ।

३४४ एकमेव व्रतं श्लाघ्यं ब्रह्मचर्यं जगत्प्रभे ।

यद्विशुद्धिं समापन्ना पूज्यन्ते पूजितरपि ॥ (पृ १३३)

सीना लोका में ब्रह्मचर्य नाम का व्रत ही प्रशंसनीय है क्योंकि विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत को पालनवाला पूज्य पुरुषों द्वारा भी पूजित होते हैं ।

३४५ नात्यसत्स्वर्न निःश्रीर्न बीनमभिनयित ।

स्वप्नरपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरे ॥ (पृ० १३३)

अत्यशक्ति शीलरहित, दीन और इश्वरियो में जीत गए लोग इस ब्रह्मचर्य-व्रत का स्वप्न में भी पालन नहीं कर सकते ।

३४६ अयमात्मा स्वयं साक्षाद् गुणरत्नमहारथः ।

सर्वज्ञः सचद्रुक सार्वः परमेष्ठी मिरञ्जतः ॥ (पृ० २००)

यह आत्मा स्वयं साक्षात् गुण-रत्नी रत्नों से भरा हुआ मन्द है यह सचद्रु सर्वदर्शी सर्वज्ञ शक्तिवाला परमपद में स्थित (=परमेष्ठी) और सब प्रकार के बाधिका में रहित (=मिरञ्जत) है ।

३४७. यद्विह जयति किञ्चिद्विस्मयोत्पत्तिबीजं

भुजगममुजदेवेत्यस्ति सामम्पमुक्त्तः ।

तद्विहितमपि मत्वा नूनमन्मद्विच्छेदः

भजनं निवृत्तचित्तः शक्यवान्माममेव ॥ (पृ० २०९)

जो कुछ इस जगत् में विस्मय का उत्पन्न करनेवाला
सर्प मनुष्य और पक्षियों में उत्कृष्ट सामर्थ्य है
वह सब केवल आत्मा में ही स्थित है—एसा मानकर
हे मनुष्यो ! तुम निश्चय-निश्चि होकर निरन्तर अपने आत्मा में ही
विद्वान् बनो

३४८ तदस्य कर्तुं जगदहिलीमं
तिरोहितास्ते सहस्रव दक्षितः ।
प्रबोधितस्तां समभिम्यनवित
प्रसह्य विज्ञानमयः प्रवीण ॥ (पृ० २३०)

ममस्त जगत् का अपन प्रभाव में प्रभावित करनेवाली इस आत्मा
की स्वाभाविक शक्ति मायारण अवस्था में छिपी हुई रहती है । प्रज्वलित
झिया हुआ विज्ञान का प्रवीण उसको अल्पपूर्व प्रकट कर देता है ।

अर्थात् आत्मा की अपनी स्वाभाविक शक्ति बढ़ प्रभावशाली होते
हुए भी मायारणतया छिपी रहती है । ज्ञान और विद्या द्वारा ही उस महान्
शक्ति की अभिव्यक्ति की जा सकती है ।

३४९ मनः शुद्धयै शुद्धिं स्यादहितां मात्र संगमः ।
बुधा तद्व्यतिरेकेण कायस्थस्य ब्रह्मणम् ॥ (पृ० २३४)

निःसंदेह मन की शुद्धि से ही आत्मा की शक्ति होती है । मन की शक्ति
के बिना केवल शरीर का ब्रह्म देना व्यर्थ ही है ।

३५० अज्ञातस्वस्वरूपेण परमात्मा न बोध्यते ।
आत्मदेव प्राग्विनिश्चेयो विज्ञात पुर्य परम् ॥ (पृ० १६)

जिसे अपन स्वरूप को नहीं जाना गया है वह परमात्मा को नहीं
जान सकता । इसलिए परम पुर्य परमात्मा का ज्ञान के लिए अपने
को ही निश्चयपूर्वक जानना चाहिए ।

३५१ धर्मो गतिस्वभावोऽयमथम स्थितिस्तथा ।

तपोर्धोगात्पदार्थानां धतिस्त्वती उवाचते (५० ४४१)

धर्म प्रगतिशील होता है और अधर्म स्थितिशील । इसलिए क्रमशः धर्म और अधर्म के योग से ही पदार्थों की गति और स्थिति कही जाती है।

२

धम्मपद

[भगवद्गीता के समान ही बौद्ध धर्मानुयायियों में धम्मपद का अत्यधिक प्रचार है। इसके अनेकानेक संस्करण विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध हैं। यह पालि भाषा में है।]

३५२ नहि वेरेण वेरानि सम्मतीष कुवाचन ।

अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनस्ततो ॥ (५)

इस संसार में वैर के वर कभी शांत नहीं होते। अगर भर्षातु मंत्री में ही वर शांत होते हैं। यह नियम सदा में चला आया है।

३५३ अपमत्तो पमत्तेसु सुत्तसु बहुजागरो ।

अवत्तस्सं व सीधस्सो हित्वा याति सुमेधतो ॥ (२९)

प्रमादा लोगों में अप्रमादी और (अज्ञान की निगाह में) मोत हुए लोगों में जागरणशील बुद्धिमान् अनुप्य कुशल पाद में सज पाद के समान भाग बढ़ जाता है।

३५४ चित्तं इत्तं गुरावहं ।

(३५)

दमन किया हुआ चित्त सुख-दायक होता है।

३५५ नत्थि जापरतो भय ।

(३६)

जागते हुए को भय नहीं होता।

३५६ यथापि रुधिर पुष्पं वण्णवन्तं भगवन्क ।
एवं सुभासिता वाचा भक्ता होति अनुष्णतो ॥ (११)

(कथनानुसार) आचरण में करनेवाले की सुभाषित वाणी सुन्दर वणयुक्त (विशुद्ध) गहराहित फूल के समान ही होता है ।

३५७ यो बालो मज्झतो वास्य पण्डितो चापि सेम सो ।
बासो च पण्डितमानो स वे बालोति वुञ्चति ॥ (६३)

जो मूल अपनी मूलता का समझता है उतन अर्थ में वह पण्डित है ।
असली मूल तो उमड़ा कहते हैं जो मूल होने हुए भी अपने का पण्डित समझता है ।

३५८ अस्तान् वमयन्ति पण्डिता । (८०)

पण्डितजन अपना दमन करत हैं ।

३५९ अप्पका ते मनुस्सेसु पे जना पारणामिनो ।
अपाय इतरा पजा तीरमेवानुभायति ॥ (८५)

जो पार पटुंघते हैं मनुष्यों में गम्य यात्रा हा हात है । और साग ता गम्य ही है जो बिनागे-फिनागे ही दोहन है ।

३६० मासे मासे सहस्सेन वा यज्जय सत्तं सत्तं ।
एकञ्च भावितत्तान् मुहुत्तमपि पूजये ॥
सायेव पूजना सेम्यो य वे वस्सत्तं हुत्तं । (१०६)

काई मनव्य गहन्य (दक्षिणा) देकर मी बय तब प्रति मास यज्जया
ह दूमरी बार वह विमुक्त आत्मावाक की मुहुत्त भर भी पूजा करता है
गा मी वर्ष के उपन में वह मुहुत्त भर की पूजा ही अच्छी है ।

३६१ विसं मीविशुक्कामो व पापानि परिवग्गये । (१३)

जीम की इच्छावाला मनुष्य जब विष का छाड़ देता है उगी प्रकार मनुष्य को पाप छोड़ देन चाहिए ।

३६२ न विज्जती सो जगतिप्पवेसो ।

यत्थद्विर्त्तं नप्पसहेय्यं मच्चू । (१२८)

असार में ऐसा कोई स्वान नहीं है जहाँ रहनबासे का मृत्पुन दबाय ।

३६३ अत्तत्तं उपमं कत्था न हनेय्यं न घातये । (१२९)

मनुष्य को चाहिए कि सनीको अपने जमा मममभर न किंगीको मारे न मरवाये ।

३६४ मप्पस्सुतायं पुरिसो बसिबहो'व जीरति ।

मंसानि तस्स बद्धन्ति पञ्जा तस्स न बद्धन्ति ॥ (१५२)

अल्पधुत अथवा मूर्ख मनुष्य बेल की तरह मड़ना है । उगका मांस बद्धता है, उसकी बुद्धि नहीं बढ़ती ।

३६५ मिच्छादिद्वि म संवेय्य । (१६७)

मनुष्य को मिथ्या धारणा से बचना चाहिए ।

३६६ जसिदठे मप्पमज्जेय्य । (१६८)

मनुष्य का उठना चाहिए, प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

३६७ निम्बन्ति तुष्णीमासीमं निम्बन्ति बहुभाणि ।

मितभाणित्रयि निम्बन्ति मत्थि सोके अनिम्बितो ॥ (२०७)

लोग चुप गमबाल को निम्ब कहते हैं, बहुत बाग्यनवासे को निम्ब कहते हैं मितभागी की भी निम्ब कहते हैं । मंगार में एगा कार् नहीं है जिसकी निम्ब न होती है ।

३६८ असञ्जायमत्ता मग्गो अनुट्ठाममत्ता घरा । (२४१)

मत्ता का मत अस्वाध्याय और घरा (= कुटुम्बा) का मत अनुत्थान (=उन्नति के काम में लगना) होता है । अर्थात् उसे स्वाध्याय न करने में मग्न नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार उन्नति के मार्गों के न करने में घर या कुटुम्ब नष्ट हो जाते हैं ।

३६९ न जटाहि न गोत्तहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

यन्मि सञ्चञ्च घम्मो च सो मुची सो च ब्राह्मणो ॥ (२०)

न जटा से न गात्र से न जन्म से ब्राह्मण होता है । जिसमें मरत्य और धर्म है वही पवित्र और वही ब्राह्मण है ।

सातवाँ अध्याय

इस अध्याय में तीन भागों में, प्रथम अर्थशास्त्र चाणक्य-सूत्र की मनुस्मृति से जुड़ हुए सुभाषित दिए जाते हैं। कौटिल्य अथवा चाणक्य आचार्य का बनाया हुआ अर्थशास्त्र भारतीय राजनीति-शास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है। इसका समय लगभग चौथी शताब्दी ई० पू० ही संभव है। चाणक्यसूत्र भी उसीका बनाया हुआ समझा जाता है। मनुस्मृति का प्रसिद्ध ही है। उपमन्यु धर्मशास्त्र में यह प्राचीनतम और प्रमुखतम समझी जाती है। अपनी-अपनी दृष्टि में तीनों ग्रन्थों का विचार महत्त्व है।

१

अर्थशास्त्र

३७० न वंचितवमन्यत सबस्य शत्रुयाम्मतम् ।

वासस्याप्ययवशाक्यमुपपुञ्जीत पण्डित ॥ (१।११)

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि यह क्रिमोका अपमान न कर सबक मर पा मुन, और एक बालक को भी अच्छी बात का सुनकर उसका उपयोग करे ।

३७१ अनुत्पाने ध्रुवी मातः प्राप्तस्यानाप्तस्य च ।

प्राप्यते फलमुत्पानास्तमते चार्थताम्यम् ॥ (१।१२)

उन्नति के लिए संचयन ही है जो प्राप्त है और जो भविष्य में प्राप्त हो सकता है उन दोनों का साथ निश्चित है। उन्नति के लिए संचयन होने से ही फल प्राप्त होता है और मनुष्य अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है।

३७२ स्वयमपस्विन्नं नावमन्यत ॥

(५।६)

जो वस्तु स्वयं उपस्थित हो उसका भवमान न करना चाहिए ।

३७३ ब्रित्वं ब्रित्वेन हन्यताम् । (११२)

बल का ब्रेल स ही वाकना चाहिए । अर्थात् मधुआ का माग उनम आपम म ही संघर्ष कराकर करना उचित है ।

३७४ नक्षत्रमति पूच्छस्त घासमर्षोऽस्तिवर्तते ।
अर्षो ह्यस्य नक्षत्र किं करिष्यन्ति तारका ॥ (११६)

जो मूर्ख (जिमी काम न करने के लिए) नक्षत्र के विषय में अति पूछ-ताछ करता है उसका कार्य उसके हाथ में निफल जाता है । वास्तव में कृतार्थ मर्ष स्वयं अपना नक्षत्र होता है उमीना दमना चाहिए । ताजे क्या कर सकते हैं ? अर्थात् कुछ नहीं ।

२

चाराण्य सूत्र

३७५ जितारमा सर्वार्थे समुप्यत । (१०)

जिसने अपना जीवन लिया है उससे सब अभीष्ट मर्ग मिले हैं । जान है ।

३७६ मात्ररक्षम वायसिद्धिर्भवेति । (११)

मात्र की रक्षा करने पर वाय की सिद्धि होगी ।

३७७ अग्निदद्यादपि विगिरटं वायपाण्यम् । (१२)

वाणी की कठारमा अग्नि के साथ भी अति बल देगी है ।

३७८ पुरपकारमनुवर्तते वैश्वम् । (१३)

नाथ पुरपाय का अनुसरण करना है ।

३७९ परीक्ष्यकारिणि भीतिचरं तिष्ठति । (११३)

जो परीक्षा करके काम में प्रवृत्त होता है उसमें लक्ष्मी भिरबास तक निवास करती है ।

३८० न बभ्रप्रमाणानां कायसिद्धिः । (१२१)

जो भाग्य में ही विश्वास करते हैं उनके कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

३८१ दारिद्र्यं क्षलुः पुंस्यस्य जीयितं मरणम् । (१५७)

दरिद्रता मनुष्य का जीते हुए मरण है ।

३८२ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः । (१४३)

मूर्ख मनुष्य अपने दोषों को नहीं देखता दूसरे के दोषों को ही देखता है ।

३८३ श्रमशत्रुष्याधिप्लवशेषः कर्त्तव्यः । (४३५)

श्रम शत्रु और रोम का शप न छाड़ना चाहिए ।

३८४ निह्वायसी बृद्धिबिनाशी । (८४०)

मनुष्य का बृद्धि और बिनाश, उन्नति और मवनति जित्ना के अयोग होते हैं ।

३८५ आत्मा न स्तातव्यः । (५०९)

आत्मस्वाभा न घबराता चाहिए ।

३८६ स्वकाममद्य बुधीत । (५३९)

काम का काम आज कर लेना चाहिए ।

३८७. शास्त्रमोष्यलोभजो मूषवृत्त्यः ॥ (५४३)

घास्य को जानत हुए भी जा लाक-व्यवहार का नहीं जानता वह मूर्ख के समान होता है ।

३

मनुस्मृति

भोजन-विषयक नियम

३८८ पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चतुर्बहुस्तपन् ।
 वृष्ट्या हृष्येत्प्रसीवेच्च प्रतिनन्वेच्छ सवर्ग ॥
 पूनितं हृणाम नित्यं ब्रह्मभूज प्र यच्छति ।
 अपूनितं तु तद् भुक्तमुभय नाशयविद्वम् ॥
 मोक्षिष्ठं कस्यचिद्दद्यात्तद्याच्च तपान्तरा ।
 न च बाध्यमानं कुर्यान्न चोच्छिष्टं क्यचिद् ब्रजेत् ॥
 अनारोग्यमनाप्यमस्वग्यं चातिभोजनम् ।
 अपुण्यं सोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिब्रजयत् ॥ (२।५४-५७)

आ कुछ भोज्य पदार्थ मनुष्य को प्राण हो वह मग उसका आनन्द की दृष्टि से दोष न निवासन हुए भोजन करने स्मर हय और प्रमत्तता का अनुभव करने और जाव म उसकी प्रणमा कर ।

मत्वार किया हुआ अन्न सदा बल और शक्ति का देता है । तिरस्कार की भावना के साथ खाया हुआ भोज्य उस शक्तियों का नाश कर देता है ।

उच्छिष्ट भोजन विमोक्ष न है । दिन और मायका के भोजनों के साथ में भोजन न कर । अधिक भोजन न कर और जूट मग नहीं न जाय ।

अतिमोजन अस्वास्थ्यकर होन के साथ-साथ आयु को भी कम करता है। उससे मनुष्य का परस्त्रीक भी बिगड़ता है, वह अपुण्य है और दूसरे लोग भी उसकी निन्हा करते हैं। इसलिए अतिमोजन कभी न करना चाहिए।

इन्द्रिय-संयम

- ३८९ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिवु ।
सयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेषु बाजिनाम् ॥ (२१८८)
- इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन बोधमृच्छस्पर्शशयम् ।
संनियम्य तु ताम्येषु तत्ति सिद्धिं नियच्छति ॥ (२१९१)
- न ज्ञातुं कामं ज्ञानानामुपभोगेन क्षाम्यति ।
हृषिया कृष्णवस्त्रेण भूय एवाभिवर्धते ॥ (२१९४)
- न तत्त्वज्ञानं शन्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रमुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यज्ञा ॥ (२१९६)

विद्वान् का चाहिए कि वह जब मारवि माइँ को संयम न रखता है उस ही आकषण करनेवाले विषय में जानवाली इन्द्रिया का संयम में रखने का यत्न करे।

इसमें सन्देह नहीं कि विषय में इन्द्रिया की प्रसक्ति से मनुष्य बुराई की ओर प्रवृत्त होता है और उनके संयम में जीवन के सङ्ग की सिद्धि को प्राप्त करता है।

काममात्र के उपभाग में कामना कभी शान्त नहीं होती। प्रत्युत यी में अग्नि की तरह वह और बढ़ती है।

यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि विषयों में प्रसक्त इन्द्रियों का अपन विषयों में हटान मात्र में क्या वास्तविक संयम नहीं किया जा

सकता जसा कि मदा ज्ञान मे अपने आदरा और विषयों के स्वरूप के सतत चिन्तन से किया जा सकता ह ।

३९० वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तर्पांसि च ।

न विप्रकुष्ठभावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित् ॥ (२।९७)

जिसके भाव अपवित्र ह ऐसे मनुष्य के मन्त्र-घ में वेदा का अध्ययन दान यज्ञ नियम और तप कभी सिद्धि नो नहीं प्राप्त होते अर्थात् उसने लिए वेदाध्ययनादि सब बिसकुल व्यर्थ ह ।

गुरु-शिष्य ना स्नेहसम्बन्ध

३९१ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेषभिस्तर्हि रस माम् ।

असूयकाय मां मा वास्तया स्यां बीयवत्तमा ॥ (२।११४)

यमेव तु शुचिं विद्या नियतब्रह्मचारिणम् ।

तस्म मां ब्रूहि विप्राय निधिपापाग्रमाग्नि ॥ (२।११५)

य माषुणोत्पद्यितय ब्रह्मणा धर्मजायुमी ।

स माता स पिता श्रेयस्त न ब्रुह्मत्कवाचन ॥ (२।११६)

अभिवाचनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेवित ।

घस्वारितस्य घमन्त आयुर्विद्या यशोयत्नम् ॥ (२।११७)

विद्या ब्राह्मण के पान आकर कहन लगी—

‘म तरी निधि हू मरी रक्षा कर

ओ निन्दक हू तम मुझ न दे

तमी म विनायक शक्तिवाली हू मरूंगी ।

जिसका तुम पवित्र और

मंगल-विषय ब्रह्मचारा ममतात है

विद्या की निधि रूप में रक्षा करनेवाला

उसी भ्रमकारी छात्र के लिए मुझे दा ।”

जो ब्रह्म-रूपी ज्ञान से वास्तव में
 वानों कानों का आपूरित कर देता ह
 उस गुरु को माता और पिता समझना चाहिए,
 उससे कभी भी द्रोह न करना चाहिए ।

जो भविष्य-शील है
 जो सदा बुद्धों का सेवन करनेवाला ह
 उसने आमु विद्या यश और बल
 ये चारों सदा भक्त रहते हैं ।

३९२ उपाध्यायान्बशाचार्य आचार्याणां शत पिता ।
 सहस्र तु पितृम्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ (२।१४५)

दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य का, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता
 का और सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक होता ह ।

३९३ न हायनन पस्त्रिर्न वित्तं न बन्धुभिः ।
 श्रययश्चकिरे धर्मं योज्जुषान् स मो महान् ॥ (२।१४४)

न बर्षों से न सफ़्त बालों से न वित्त से न भाई बन्धुओं से किसीका
 महत्त्व होता है । श्रययिषो न इसी धर्म (=मयादा) का पसाया है कि
 'हममें जो वस्तुन विद्वान् है वही बड़ा ह ।

३९४ न तेन बुद्धो भवति येनास्य पलित शिरः ।
 यो वै मुखाप्यधीयामस्तं देवाः स्वविरं विदुः ॥ (२।१४६)

मिर के बालों के सफ़द ह। ज्ञान से कोई बुद्ध नहीं हा जाता । मुखा होते
 हूय भी जो विद्वान् है, दयतागण अथवा विद्वान् लोग उमीका बुद्ध समझते हैं ।

३९५ अहितर्षेव भूतानां नाय भ्योज्जुषातानम् ।
 नाकर्त्तव्यं मधुरा दक्षिणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ (२।१४९)

किसीको भी यदि भर्त्सा या बन्धाण-भाग का उपपन्न किया जाय तो अहिंसापूर्वक ही देना चाहिए। जो धर्म के भाग का अनुसरण करता चाहता है उसे मभुर और स्निग्ध वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए।

३९६ नादन्तुर्वा स्थावार्तोऽपि न परलोहकर्मधी ।

ययास्योद्विजते वाचा मासौख्यां तामुबोध्येत ॥ (२।१६१)

स्वयं पीड़ा से ग्रस्त होकर भी मनुष्य को दूसरों का मर्मालि पादा येनवाला न होना चाहिए और न दूसरे के द्राह के कारण दुष्कर्म या दुश्चिन्तन करना चाहिए। जिससे दूसरों को व्यथा हो ऐसी लोक-वग्नाक दाता का बिगाड़नवाली वाणी का भी न वाचना चाहिए।

३९७ सम्मानाद् ब्राह्मणो मित्यमुद्विजत विपारिव ।

अमृतस्येव चाकाङ्क्षेरवमानस्य सवदा ॥ (२।१६२)

ब्राह्मण को चाहिए कि वह विप के समान सम्मान में दूर रहे और अबमान के लिए अमृत के समान मग्न आनाया न करे।

३९८ अद्भुतान् गमो विद्यामादधीतावरारवि ।

अस्पादवि पर धम स्त्रोरत्नं बुधुनारवि ॥ (२।१६८)

मनुष्य का अद्भुती विद्या छात्र दर्जे के मनुष्य में भा श्रद्धा-पुरुस्कर लानी चाहिए। इसी प्रकार उत्कृष्ट धर्म का ज्ञान अन्यत्र में भा और उसमें गणवती स्त्री दुष्पुत्र में भी ले लनी चाहिए।

३९९ स्त्रियो रत्नाग्रयो विद्या धम नीव मुमापितम् ।

बिबिधानि च शिष्यानि समादेयानि सधवा ॥ (२। ६०)

गणवती स्त्रिया रत्न विद्या धर्म परिश्रम का आधार मुनापित और विभिन्न प्रकार के शिष्यानि समादेयानि सधवा पाणि।

स्त्रियों का सम्मान

- ४०० यत्र भार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
 यत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तित्राफला भिया ॥ (२।५६)
 शोचन्ति आमयो यत्र विनश्यत्पाशु तत्कुसम् ।
 न शोचन्ति तु यत्रता वर्धते तद्भि सर्वदा ॥ (३।५७)
 तस्मादेता सदा पूज्या भूषणाच्छादनादानै ।
 भूतिकामैर्नरैर्नित्य सत्कार्यैस्तवेपु च ॥ (३।५९)
 समुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च ।
 यस्मिन्नेव कुले नित्यं कस्यापि तत्र वै धुबम् ॥ (३।६०)

जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है वहा देवता रमण करते हैं ।
 वहाँ उनका सम्मान नहीं होता वहाँ समस्त यज्ञादि कर्मकाण्ड निष्फल
 होता है ।

जिस कुल में निकट सम्बन्ध की स्त्रियाँ शोकातुर होकर दुःख पाती ह
 वह कुल शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । जिन कुल में वे प्रमत्त रहती
 हैं वह सदा घटता रहता है ।

दत्तश्चि एदवयं या कस्यापि की कामना करनेवासे मनुष्यों को चाहिए
 कि वे सत्त्व और विषयगत सत्कार और उत्सव क मन्सरों पर उत्तम
 भूषण वस्त्र और भोजन न स्त्रियों का समावर करें ।

जिन कुल में भार्या स भर्ता और भर्ता से भार्या मवा सन्तुष्ट रहते ह
 वहाँ निश्चय ही स्वामी कस्यापि का वास रहता है ।

गृहस्थाश्रम का महत्त्व

- ४०१ मया वार्यु समाधित्य वर्तन्ते सर्वजतव ।
 तया गृहस्थमाधित्य वर्तन्ते सब आधमा ॥ (७७)

यस्मात्प्रयोऽप्याश्रमिणा बानेमाप्तेन चान्वहम् ।

गृहस्थेन च धार्यते तस्मात्प्रयोऽप्याश्रमो गृही ॥ (३।७८)

जमे वायु क आश्रय न सब प्राणी जीवित रहने ह वस हो गृहस्थ क आश्रय स सब आश्रमा का निर्वाह हाता ह ।

जिसम गृहस्थ ही वान और अन्न स प्रतिदिन श्रमचर्य वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमा क लागों का धारण करता ह इनने गृहस्थ का ही आश्रम अथ सब आश्रमों स उन्मुष्ट ह ।

४०२ भय स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्पात्मकारणात् । (३।११८)

जा अपन म्नि ही भाजन पचाता ह वह माना कबल पाप का ही नाशन करता ह ।

४०३ नात्मानमवमन्यत पूर्वाभिरसमुद्रिभि ।

आमृत्यो धियमग्विच्छेदेनांमन्यत दुक्तमान् ॥ (४।१३७)

पूय की विफलताओं क कारण भयन का हान समझकर हतात्मा नह होना चाहिए, प्रत्युत अम्युदय क म्नि जीवनगमन्त परिश्रम करत रहना चाहिए और उसका दुःख नही मानना चाहिए ।

४०४ सत्यं ब्रूयात्प्रिय ब्रूयात्त ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।

प्रिय च नानृत ब्रूयादेय यम सनातन ॥ (४।१८)

मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बात प्रिय बात अप्रिय बात को न माले और असत्य प्रिय का भी न बात । यह सनातन धर्म ह ।

४०५ आचारात्तमते ह्यामृताचारादीप्तिना प्रजाः ।

आचारादुनमस्यमाचारा इत्यलक्षणम् ॥ (४।५५)

समाचार क पालन स मनुष्य पूरा आय का अन्निर्गति माननों को और भगव्य धर्म का पाता ह । समाचार स बराबरी का मन्त्र कर दाता ह ।

४०६ यत्कर्म कृतोऽस्य स्यात्परितोयोऽन्तरात्मनः ।

तत्प्रमत्तन कुर्वीत विपरीतं तु व्रजयेत् ॥ (४११६१)

जिस काम को करता हुए अन्तरात्मा को सन्तोष हो उसको प्रमत्त पूरक करना चाहिए । जो ऐसा काम नहीं है उसे छोड़ दे ।

४०७ अभर्मेभ्यते सावत्ततो भद्राणि पश्यति ।

ततः सपत्नाञ्जयति समूहस्तु बिनश्यति ॥ (४११७४)

अधम न प्रारम्भ में मनुष्य बढ़ता है । तब अनक स्पृहणीय वस्तुओं को प्राप्त करता है । तदनन्तर अपन घमूहों पर विजय प्राप्त करता है । पर अन्त में समूह मष्ट हो जाता है ।

४०८ परिरयजद्वयकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।

धर्मे ध्याप्यसुखोत्कर्षं लोकविच्छेदमेव च ॥ (४११७६)

मनुष्य धर्म से रहित अर्थ और काम को छोड़ दे । अस्त में सुख देनेवाले तथा लोक से निवृत्त धर्म को भी छोड़ दे ।

४०९ सर्वेषामेव इमानां ब्रह्मज्ञानं विशिष्यते ।

कार्यप्रयोगहीनास्तिस्रस्काञ्चनसर्पियाम् ॥ (४१२३३)

जस अन्न गौ भूमि यस्त्र तिल भुवर्ण तथा जग जम पदार्थों के दानों से विद्या का दान बही उत्कृष्ट है ।

४१० न इत्या परिकीर्तयत् ।

(४१२३६)

दान दकर उसका कीर्तन न कर ।

४११ सर्वेषामेव शौचानामर्यशौच परं स्मृतम् ।

योऽयं शुचिर्ह स शुचिन मुद्गरिशुचिः शुचिः ॥ (७११ ६)

सब प्रकार का पवित्रताओं में धन की पवित्रता श्रेष्ठ कही गई है । धन के सम्बन्ध में जो पवित्र है वही पवित्र है । मित्र-प्राप्तियों द्वारा जो पवित्र है वह धातुवत् न पवित्र नहीं है ।

४१२ अद्भिर्ग्राश्राणि शुष्यन्ति मनः सत्येन शुष्यति ।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा युद्धिर्मानेन शुष्यति ॥ (५।१०९)

दारीर जल में सूख होने हैं मन सत्य से सूख होता है । मनुष्य की आत्मा विद्या और तप से सूख जाती है । युद्धिर्ज्ञान से सूख जाती है ।

४१३ सभा या न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा सनञ्जसम् ।

अबुवम्बिबुवन्वापि मरो भवति किस्विजो ॥ (८।१३)

या तो सभा में न जाय जान पर समुचित बात नहे । प्रसङ्ग उपस्थित होने पर न बोलन में अथवा अथवा बोलेन में मनुष्य पापी हो जाता है ।

४१४ धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

तस्माच्च धर्मो न हन्तव्यो ना मो धर्मो हतो बधोत् ॥ (८।१४)

मार्ग हुआ (=पालन न किया हुआ) धर्म मार डालता है

रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है ।

इसलिए धर्म का न मारना चाहिए,

जिसने मारा हुआ धर्म हमको न मार डाले ।

४१५ यस्य पित्राहि वरतः क्षत्रज्ञो मामिन्द्रते ।

तस्मान्न देवाः श्रयांसः सोऽज्यं पुण्यं विदुः ॥ (८।१५)

जिसी बात का बहने हुए जिसका पिता भर्षात् गत्यामय का विधेकी भन्तरात्मा दक्षिण नहीं होता देवता अथवा पिता मग मगार में किसी मय पुण्य का उगम अच्छा महा समाने भर्षात् उमको गवग भर्षात् मनुष्य समझते हैं ।

४१६ चतुर्णामपि घर्णानां द्वारा रक्षयतमां सदा । (८।३५९)
चारों वर्षों की स्त्रियां की सदा रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है ।

४१७ आरभतव कर्माणि ध्यान्त ध्यान्त पुन पुन ।
कर्माध्यायभमाण हि पुण्य धीमिषेवते ॥ (९।३००)

मनुष्य को चाहिए कि ध्यान्त हो हाकर बार-बार कार्यों को आरम्भ करे । जो मनुष्य दुकृता से कार्यों में प्रवृत्त होता है उसीका धी (घोमा या सस्मी) सेवन करती है ।

४१८ नाश्वस्य क्षत्रमृज्जोति नाश्वसं ब्रह्म वर्धते ।
ब्रह्म क्षत्र च सपृक्तमिह आमुत्र वर्धते ॥ (९।३२२)

ब्रह्म-शक्ति के बिना क्षत्र-शक्ति नहीं बढ़ती, और क्षत्र-शक्ति के बिना ब्रह्म-शक्ति नहीं बढ़ती । परस्पर मिली हुई ब्रह्म-शक्ति और क्षत्र-शक्ति ही इस लोक और परलोक में बुद्धि को प्राप्त होती है ।

४१९ प्रतिग्रहं प्रत्यक्षरं प्रेत्य निप्रस्य गहिता । (१०।१०९)

ब्राह्मण के लिए अस्त्रप्रतिग्रह (=धुरा वान सना) उसके परलोक का विगाड़नेवाला होता है ।

४२० क्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनं च ।
पापकृन्मुच्यते पापास्तथा दानेन आपदि ॥ (११।२२७)

अपम पाप को प्रकट कर देने से परजाताप से तप से अध्ययन से और आपत्ति के अघसर पर दान देने से पाप करनेवाला पाप से छूट जाता है ।

४२१ यद्वुस्तरं यद्वुरापं यद्वुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्य तपो हि दुरतिष्ठम् ॥ (११।२३८)

जो दुस्तर है जो दुराप (कठिनाता से प्राप्य) है जो दुर्गम है जो दुष्कर है वह सबकुछ तप द्वारा सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि तप से मनुष्य प्रत्येक कठिनाता को पार कर सकता है ।

४२२ अगम्यो ग्रन्थिन श्रेष्ठा ग्रन्थिम्यो धारिणो वरा ।

धारिम्यो ज्ञानिन श्रेष्ठा ज्ञानिम्यो व्यवसायिन ॥ (१२।१०५)

अज्ञा से ग्रन्थ पढ़नवाले श्रेष्ठ होते हैं ग्रन्थ पढ़नवालों से ग्रन्थों का धारण करनेवाले (स्मरण रखनवाले) श्रेष्ठ होते हैं ग्रन्थ धारण करनेवालों से ज्ञानी (उनके अभिप्राय का समझनवाले) श्रेष्ठ होते हैं और ज्ञानियों से तदनुरूप आचरण करनेवाले श्रेष्ठ होते हैं ।

आठवाँ अध्याय

इस अध्याय में भी तीन भागों में क्रमशः चरक-संहिता योगवासिष्ठ और श्रीमद्भागवत में कुछ पुनः हुए थोड़े-से सुभाषित दिये जाते हैं। चरकसंहिता आयुर्वेद का प्रसिद्ध अति प्राचीन ग्रन्थ है। पर इसमें स्थान-स्थान पर सूक्ति-रत्न पाये जाते हैं। योगवासिष्ठ पौराणिक ऋषि पर लिखा हुआ अध्यात्म-विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। ग्रन्थ सुन्दर सुभाषितों से भरा पड़ा है। श्रीमद्भागवत भागवत-ब्रह्म-विषयक एक प्रमुख पुराण है। इसके विचार और भाषा दोनों ही अत्यन्त हृदयकारक हैं।

१

चरक-संहिता

४२३ धर्मार्यकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

धर्म अर्थ काम और मोक्ष का उत्तम साधन आरोग्य (स्वास्थ्य) है ।

४२४ आत्मानमेव मय्येत कर्तारं सुखदुःखयोः ।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को ही सुख और दुःख का कर्ता समझे ।

४२५ ज्ञानवतापि च नात्यथमात्मनो ज्ञानतः विकल्पितम्यम् ।

आप्तावपि हि विकल्पमात्रावत्यर्थमद्विजगति मयके ।

ज्ञानवान् मनुष्य को भी अपने ज्ञान की अत्यधिक स्तुति नहीं करनी चाहिए। आत्मस्मृति करनेवाले प्रामाणिक व्यक्ति में भी बहुत साग अत्यधिक भवता है ।

४२६ कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाकाशः । क्षान्त्वा बुद्धिमताम् ।

बुद्धिमाना के लिए सब कोई भाचाय अर्थात् शिक्षक भीर हितपी होता है और मूर्खों के लिए शत्रु ।

४२७ हेतावीष्य फले मेध्यु ।

मनुष्य को किसी भी काय के हनु के प्रति ईर्ष्या होना चाहिए, फल के प्रति नहीं ।

४२८ न नियम भिन्नात् ।

नियम-भङ्ग न करना चाहिए ।

४२९ न सर्वविध्यम्भी न सर्वानिशङ्क्यी ।

न तो सबका विश्वास करे न सबके प्रति शङ्का करे ।

४३० न कार्यकालमतिपातयेत् ।

किसी भी काय के समय का उल्लंघन न करे ।

४३१ न सिद्धावौत्सुक्यं गच्छत् । नासिद्धौ वन्धम् ।

न तो सफलता में उत्सुकता को प्राप्त हावे न असफलता में दीनता का अनुभव करे ।

४३२ मापरोक्षितमभिनिवेशेत् ।

जिसकी परीक्षा नहीं की है ऐसी बात के विषय में मामूक्ति न करे ।

२

योगवासिष्ठ

४३३ उभान्धामेव पक्षान्ध्या यथा स्ते पक्षिणां गतिः ।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं परम् ॥ (१।१।७)

आठवाँ अध्याय

इस अध्याय में भी तीन भागों में क्रमशः चरक-संहिता योगवासिष्ठ और श्रीमद्भागवत से कुछ घुन हुए जोड़े-सु सुभाषित दिये जाते हैं। चरकसंहिता आयुर्वेद का प्रसिद्ध अति प्राचीन ग्रन्थ है। पर हममें स्थान-स्थान पर सूक्ति-रत्न पाये जाते हैं। योगवासिष्ठ पौराणिक ढंग पर लिखा हुआ अध्यात्म-विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। ग्रन्थ सुन्दर सुभाषितों से भर पड़ा है। श्रीमद्भागवत भागवत-धर्म-विषयक एक प्रमुख पुराण है। इसके विचार और भाषा दोनों ही अत्यन्त हृदयकारणक हैं।

१

चरक-संहिता

४२३ धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

धर्म अथ काम और मान का उत्तम साधन आरोग्य (—स्वास्थ्य) है।

४२४ आत्मानमेव मम्येत कर्तार सुखदुःखयोः ।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपना ही सुख और दुःख का कर्ता समझे।

४२५ ज्ञानवतापि च नात्यर्थमात्मनो ज्ञानेन विकल्पितम्यम् ।

भाष्येन हि विकल्पमानादत्यर्थमद्विब्रजति अनेके ।

ज्ञानवान् मनुष्य का भी अपने ज्ञान की अत्यधिक दत्तता नहीं करनी चाहिए। आत्मदत्तता बरननास प्रामाणिक ध्यक्षि में भी बहुत लोग अत्यधिक पकड़ात हैं।

४२६ इत्थनो हि लोको मुक्तिमतामाचार्यः । तनुद्वयाबुद्धिमताम् ।

बुद्धिमाना के लिए सब कार्य आभाय अर्थात् शिक्षक और हितपी होता है और मूलों के लिए धनु ।

४२७ हेतावीप्यु फले नप्यु ।

मनुष्य को किसी भी कार्य के हेतु के प्रति हर्षादि होना चाहिए, फल के प्रति नहीं ।

४२८ न नियम भिन्नात् ।

नियम-मङ्गल न करना चाहिए ।

४२९ न सर्वविभङ्गी न सर्वमिशङ्की ।

न तो सबका विद्वास करे न सबके प्रति शङ्का करे ।

४३० न कायकालमतिपतयत् ।

किसी भी काय के समय का उत्सर्जन न करे ।

४३१ न सिद्धाबौत्सुक्यं गच्छत् । नासिद्धौ ह्यप्यम् ।

न तो सफलता में उत्सुकता को प्राप्त होवे न असफलता में दीनता का अनुभव करे ।

४३२ नापरीक्षितमभिमितिवेशत् ।

जिसकी परीक्षा नहीं की है ऐसी बात के विषय में मान्यता न करे ।

२

योगवासिष्ठ

४३३ उभाम्यामेव पक्षाम्या यथा नो पक्षिणां गतिः ।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम् ॥ (१।१।७)

जैसे पक्षी आकाश में जानों पक्षों से ही उड़ते हैं, ऐसे ही ज्ञान और कर्म दानों के याग से ही परम पद (=जीवन के परम स्वयं) की प्राप्ति होती है।

४३४ क्षणमान्ग्वितामेति क्षणमेति विपाविताम् ।

क्षण सौम्यत्वमायाति सर्वस्मिन्नटवन्मनः ॥ (११२८।३८)

प्रत्येक मनुष्य के मन की स्थिति नट के समान है। वह क्षणभर में आमन्नी बन जाता है क्षणभर में विपावी और क्षणभर में सौम्य बन जाता है।

४३५ द्वौ दृढाबिज युष्यते पुरुषाभौ समस्तभौ ।

प्राक्तनद्वन्द्वहिकद्वयं शाम्यत्यत्रास्पद्योर्यवान् ॥ (२।५।५)

पूर्वजन्म का पुरुषाभ (अर्थात् भाग्य) और इस जन्म का पुरुषार्थ कभी सम-शक्ति होकर और कभी असम शक्ति होकर दो मर्कों की तरह, परस्पर मूढ़ रहते हैं। उनमें से जो असम शक्ति वाला होता है वह हार खा जाता है।

४३६ पर पीड्यमाधित्य बन्तैर्बन्तान्निबूध्वयम् ।

शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तन पीड्यं जयेत् ॥ (२।५।९)

मनुष्य को चाहिए कि पूर्वजन्म के अशुभ पीड्य (अर्थात् दुर्भाग्य) के पश्योन्मुख होने पर, दातों से दातों को पीसत हुए, परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर शुभ कर्मों द्वारा उसका जीत ले।

४३७ मर्द्दं प्रकल्पितं ब्रह्म तापरास्ते क्षयं गताः ।

प्राज्ञास्तु पीड्यार्थेन पदमुत्तमतां गताः ॥ (२।८।१६)

पद (भाग्य) की बलाना मूढ़ लोग ही करते हैं और दब पर आधित्य होकर वे अपना नाश कर लेते हैं। बुद्धिमान् लोग तो पुरुषार्थ द्वारा ही उत्तम पद का प्राप्त करते हैं।

४३८. अपि पौरुषमात्रेय शास्त्रं चेष्टुमित्युक्तम् ।

अन्यस्त्वार्यमपि त्याज्यं भाव्यं न्याम्यकसविता ॥ (२।१८।२)

सामान्य पुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह मुक्तियुक्त बात को बतलाता है तो ग्रहण करने में योग्य है। इसमें विरुद्ध जो शास्त्र है वह ऋषि प्रोक्त हो तो भी त्याग करने योग्य है। मनुष्य को न्याम्य बात को ही मानना चाहिए।

४३९. युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं वास्तवमपि ।

अन्यसृणुमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ॥ (२।१८।३)

युक्तियुक्त वचन को वास्तव से भी ले लेना चाहिए। ब्रह्मा द्वारा भी कहा हुआ युक्तिहीन वचन तृण की तरह त्याज्य है।

४४०. तपसैव महोपेयं यद्विरूपं तदाप्यते । (३।९८।१४)

जो भी दुष्प्राप्य वस्तु है वह कठिन तप से ही प्राप्त की जा सकती है।

४४१. सर्वं स्वसङ्कल्पवशात्सद्युमवस्ति वा युतः । (३।७०।३०)

सबकोई अपम सक्त्यों के कारण ही छोटा अथवा बड़ा बन जाता है।

४४२. यदवध्यवशात्पापं बध्यत्यागासवेव हि । (३।९०।३)

अवध्य के बन्धन करने से जो पाप होता है वही पाप बध्य के छाड़ देने से होता है।

४४३. न किञ्चिद्दीर्घसूत्राणां सिध्यत्यात्मक्षयादृते । (३।७८।८)

जो दीर्घसूत्री (=देर से काम करनेवाले) होते हैं उनका अपने नाश को छोड़कर कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।

४४४. अनुद्वयं द्विधो भूतम् ।

(३।१११।२२)

उद्विग्न न हाना समृद्धिं वा मूलं है ।

४४५ न सवस्ति पुषिर्ध्यां वा दिशि देवेषु वा ववचित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन यन्नाप्नोति गुणान्वितं ॥ (४१६२।१९)

पुषिषी लाभ में दुष्साध में अथवा देवलाभ में वही भी एसी वस्तु नहीं है जिसे गुणवान् मनुष्य अपन प्रयत्न से प्राप्त नहीं कर सता है ।

४४६ अपूर्वाङ्गादवापिन्य उच्छ्वस्तरपराधया ।
अतिमोहापहारिष्यं सूक्तयो हि महीप्रसाम् ॥ (५।४।५)

महान् व्यक्तियों की सूक्तियां अपूर्व आनन्द को देनेवाली उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और अनप-भूत माह को दूर करनेवाली होती हैं ।

४४७ न कालमतिवर्तन्ते महान्तं स्वेषु कमसु । (५।१।१९)

महान् पुरुष अपने कामों में वासातिक्रम नहीं होने देते हैं ।

४४८ भविष्यं मानुसम्भूतं नातीतं चिन्तयत्यसी ।
वतमाननिमेघं सु हृत्प्रेषामुवर्तते ॥ (५।१२।१४)

वे (=जनबाराजा) भविष्य का अनुसन्धान नहीं करते न अतीत की चिन्ता करते हैं । वे हँसते हुए वर्तमान काल का ही अनुसरण करते हैं ।

४४९ चिन्तनेमघते चिन्तां त्विग्नमनस पावकं ।
मदयस्यचिन्तनमैव विन्यतमिवागतं ॥ (५।२।१६)

ईश्वर ने जिस अग्नि बढ़ती है उसे ही साधन से चिन्ता बढ़ती है । न साधन से चिन्ता वस ही नष्ट हो जाती है उसे ईश्वर ने बिना अग्नि नष्ट हो जाती है ।

४५० न स्वयैर्वाङ्मते कविष्वस्युद्धरति सद्गुदात् । (५।२९।१०)
अपन धन के बिना कोई और संकट से मनुष्य का उद्धार नहीं करता ।

४५१ अन्तस्तुष्णोपतप्तानां वावबाहमय जगत् ।

भवत्पतिलज्जन्तूनां यवस्तस्तद्वहि स्मितम् ॥ (५।५६।३४)

मिनका अन्नकरण तूष्णा से तप्त है उनका यह जगत् वावानल (जंमल की भाग) स्वरूप प्रतीत होता है। सब प्राणियों के जो मन्दर (मन में) होता है वही बाहर जगत् में विभार देता है।

४५२ अर्थं सम्जनसम्पर्काविद्याया विनश्यति ।

चतुर्भास्तु शास्त्रार्थश्चतुर्भां स्वयत्नतः ॥ (६।७०।१२।३७)

सज्जनो के संपर्क से आधी अविद्या नष्ट हो जाती है उसका चतुर्भां शास्त्र के विचार से नष्ट हो जाता है और छप चतुर्भां अपने यत्न से नष्ट होता है।

४५३ व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।

यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥ (६।७०।२।३८)

जो एक शिल्पकार के समान केवल भाजीविका के लिए शास्त्र को पढ़ता है और उसका व्याख्यान करता है परन्तु तदनुकूल आचरण करने का यत्न नहीं करता वह केवल ज्ञानबन्धु नाममात्र का जानी कहलाता है।

४५४ अज्ञोऽपि तज्ज्ञतामेति नर्तः शलोऽपि क्षुप्यति ।

द्याणोऽप्यति महास्रक्प पश्यान्यासविभृन्मिमतम् ॥

(६।७०।३।३९)

अभ्यास का माहात्म्य देखो। अभ्यास में—मूख विद्वान् बन जाता है धीरे-धीरे पर्वत भी क्षुण्ण हो जाता है और बाण भी अपने महान् शक्त का प्राप्त हो जाता है।

४५५ अब्रह्मपुर्व्वम्भुतामेति नैरुट्पन्नम्यासयोगतः ।

यात्यमम्यासतो ब्रूतास्नहो ब्रह्मपु तानवमः ॥ (६।७०।३।४०)

बार-बार मिलन के सम्बन्ध से अबन्धु बन्धु बन जाता है। दूरी के कारण परस्पर मिलन का अभ्यास छूट जाने से बन्धुओं में भी स्नेह की कमी हो जाती है।

४५६ यो यावुकवसेनामाघातुं समर्थस्तावुगव स ।

भवत्यर्पस्तमाप्नोति प्रबुद्धोऽस्तव स एव वा ॥ (६८०।१०२।३३)

प्रबुद्ध हो या अप्रबुद्ध हो जो जमा क्लेश उठाने को समर्थ है वह वसा ही फल अवश्य पा लेता है।

४५७ ना यथा यतत नित्य यज्ज्ञावयति यमय ।

यावुमिच्छेच्च भवितुं तावुमवति नान्यथा ॥ (६८०।१५७।११)

मनुष्य नित्य जसा यत्न करता है तमय होकर जसी भावना करता है और जसा होना चाहता है, वसा ही हो जाता है अन्यथा नहीं।

४५८ अद्यैव कुरु घच्छेयो बृद्धं सन्निक करिष्यसि ।

स्वगात्राप्यपि भाराय भवन्ति हि विषयमे ॥ (६८।१६२।२०)

जो मपन बल्याण की बात है उसे आज ही कर। बूढ़ हाकर क्या करेगा? क्योंकि बूढ़ावस्था में अपन शरीर भी भारभूत हो जात है।

४५९ तातस्य कूपोज्यमिति युवाणां

तारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति । (६८०।१६९।५६)

यह कुआ हमारे पिता का है एगा बहुत दूर निकम्मे पुरुष सारी जल को पीते हैं।

४६० आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नं सम्यते ।

भीषते तद् वृषा घेन प्रमादं मुमहानहो ! (६८०।१७५।७८)

आयु का एक क्षण भी ससार के सब रस्त्रों से नहीं पाया जा सकता ।
उस आयु को यदि कोई व्यर्थ में खोता है तो अहो ! बड़ा भारी प्रमाद है ।

३

श्रीमद्भागवत

४६१ स्वयं हि तीर्याणि पुनस्ति सस्त । (१।१९।८)

सस्त स्वयं तीर्थों का पवित्र करते ह ।

४६२ नमः पतस्थात्मसमं पतत्रिणः । (२।१८।२३)

पक्षी अपनी शक्ति के अनुसार ही (अनन्त) आकाश में उड़ते हैं ।
अर्थात् मनुष्य की उन्नति का क्षेत्र अनन्त है उसमें वह जितनी चाहे उतनी
उन्नति अपन ही प्रयत्न से कर सकता है ।

४६३ यश्च मूढतमो लोके यश्च बद्ध परं गतः ।

तावुनी सुखमघते क्षिप्र्यत्यस्तरितो जनः ॥ (३।७।१७)

ससार में जो अत्यन्त मूढ़ है और जो पूर्ण जानी है वे दोनों सुख से
रहते हैं । परन्तु जो मनुष्य दोनों के बीच की स्थिति में है वह कष्ट को
प्राप्त होता है ।

४६४ ब्राह्मणः समवृक्षस्तो भीमानां समुपेक्षकः ।

भवते ब्रह्म सत्यापि मित्रमाणात्पयो यया ॥ (४।१४।४१)

जो ब्राह्मण सर्वत्र समवृष्टि और शान्त होता हुआ भी दीन जनों की
उपेक्षा करता है उसका ब्राह्मणत्व भी टूट हुए पान से निकलते हुए पानी
के समान भीरे-भीरे क्षीण हो जाता है ।

४६५ प्रमथो ह्यात्मनः स्तोत्रं अगुप्सन्त्यपि विद्युताः । (४।१५।२५)

समर्थ पुरुष विस्वाद्य होते हुए भी अपनी स्तुति को पसन्द नहीं करते ह ।

४६६. एतावानभ्यसो धर्मं पुण्यश्लोककृपासित ।

यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति वृष्यति ॥ (६।१०।९)

प्राणिमात्र के शोक और हर्ष में जो शोक और हर्ष की अनुभूति है इतना ही अशय धर्म है । पवित्र कीर्तिवाले महापुरुष इसी धर्म का सवन करते हैं ।

४६७. इन्द्रियाणि प्रमादयन्ति हरस्तपि यतेर्मनः । (७।१२।७)

अत्यन्त तप करनेवासी इन्द्रियां यति (=संन्यासी अथवा संयतारमा) के भी मन-का हर लेती हैं विषयों की ओर ले जाती हैं ।

४६८. मावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वस्थं हि रेहिताम् ।

अधिरं पोडभिमर्शेत स स्तेनो वण्डमर्हति ॥ (७।१४।८)

अपन पेट के भरन के लिए (=अपनी प्राण रक्षा के लिए) जितन पदार्थ की आवश्यकता है प्राणियों का स्वस्थ उत्तन में ही है । उसकी अपेक्षा जो अधिर में आमक्ति करता है वह पार है और वण्डनीय है ।

४६९. न सरस्मेज सिष्यस्ति सर्वेर्षा सान्त्वया यया । (८।६।२४)

प्रय नाम जसे शान्ति स सिद्ध होने है बसे भगानि स मर्ही ।

४७०. तप्यन्ते लोदन्तापेन सायव प्रायशा जनाः ।

परमाराधनं तद्धि पुण्यस्याखिलात्मनः ॥ (८।७।४४)

साधुजन प्रायण संसार के ताप में मत्तप्य होने हैं । यही विवमावन भगवान् का उत्कृष्ट आराधन है ।

४७१. श्रेयः कुर्यन्ति भूतानां सायवो कुस्त्यजामुभिः । (८।१०।७)

साधुजन अपने दुस्त्यज (=जिनसे त्यागना कठिन है) प्राणों से भी प्राणियों का कल्याण करते हैं ।

४७२ यथा न कुर्वते भार्वा सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।

समदृष्टेस्तथा पुंसः सर्वा सुखमया विष्टा ॥ (१।१९।१५)

अब मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है जबकि वह प्राणिमात्र के प्रति अमङ्गल (=अकल्याण) की भावना नहीं करता तब यह समदृष्टि हो जाता है । उस स्थिति में उसने लिए सब दिखाए सुखमय हो जाती हैं ।

४७३ स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्तमः । (१०।४७।५)

मुनि के लिए भी बन्धुओं के प्रति स्नेह के बन्धन को छोड़ना बड़ा कठिन है ।

४७४ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मुञ्छिन्ममया ।

ते पुनन्त्युल्लासेन बशनादेव साधवः ॥ (१०।४८।३१)

वास्तव में नदी आदि के जल से युक्त स्थानों को तीर्थ न समझना चाहिए, न मिट्टी-पत्थर से बनी हुई मूर्तियों को देवता समझना चाहिए । बहुत काल के पश्चात् ही वे पवित्र बनते हैं । परन्तु साधुजन दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं । (अतः उनको ही सच्चा तीर्थ और देवता समझना चाहिए ।)

४७५ एकं प्रसूयते अन्तुरेक एव प्रसीयते ।

एकोऽनुमुह्यते सुहृतमेक एव बहुकृतम् ॥ (१०।४९।२१)

प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है । अकेला ही वह अपन पुण्य और पाप के फलों को भोगता है ।

४७६ न व क्षूरा विकल्पस्ते दर्शयस्येव पौरुषम् । (१०।५०।२०)

क्षर-वीर पुरुष आत्म-श्लाय नहीं करते । वे केवल अपन पौरुष (=पराक्रम) को ही दिखाते हैं ।

४७७. सुसुप्तो न चाप्योपस्ति मत् स्वहृतमुत्सुमान् । (१०।५१।३८)

सुख और दुःख का देववासा कोई दूसरा नहीं होता, क्योंकि मनुष्य अपने किये का ही फल पाता है ।

४७८. मनुष्यस्य महद्दुःखस्य शास्त्रस्य कुशलो मरुः ।

सर्वतः सारमाद्यत् पुण्येभ्य इव घटपट ॥ (११।८।१०)

जैसे भौरा छोट-बड़े सब पुण्यों से रस को लेता है इसी प्रकार कुशल मनुष्य को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सब शास्त्रों से सार को ग्रहण करे ।

४७९. तस्य जितेन्द्रियो न स्याद्विजिताभ्यन्त्रिय पुमान् ।

न अये ब्रह्मसंनं पावज्जितं सर्वं जिते रते ॥ (११।८।२१)

अस्य इन्द्रियों को जीतनवाले मनुष्य में जबतक रसनेन्द्रिय का नहीं जीत लिया है तबतक उसे जितेन्द्रिय नहीं कह सकते । रस अर्थात् स्वाद के जीतने पर सबका जीत लिया ऐसा कह सकते हैं ।

४८०. ब्राह्मणस्य हि वेहोऽयं क्षुद्रकामाय मेव्यते ।

कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ (११।९।४२)

ब्राह्मण का यह शरीर क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं है । वह ता दस भाग में पारसप के लिए और परसोक में शाश्वत ब्रह्मण के लिए ही है ।

४८१. जिह्वा क्वचित्सम्बसति स्वबद्धिः

तद्वदभायां कृतमाम कुप्येत ॥ (११।२३।५१)

अपन वांछों में ही कभी अपनी जिह्वा के काट मरने पर जा पीड़ा हाती है उसके लिए मनुष्य जिस पर प्रोष करेगा ? अर्थात् जिस स्थिति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं उसके लिए दूसरों को दोष देना अनपचित है ।

सुभाषित-सप्तशती

तृतीय खण्ड

अध्याय ९—१३

किमु धनविद्यानवद्या यदि ?

सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ? (नीतिशतक २१)

यदि अनिन्दनीय विद्या ह, तो धनों से क्या ?

यदि सुन्दर कविता है तो राज्य से क्या ?

नवां अध्याय

इस अध्याय में केवल महाकवि कालिदास के काव्या और नाटकों से कुछ चुन हुए सुमापित-रत्न दिये गए हैं। कालिदास को विद्याभिवेता मरस्वती का 'कविकुलगुरु' कालिदासो विलास कहा गया है। उनकी कीर्ति सुदूर विदेशों तक फैली हुई है। वे भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रतिनिधि कवि मान जाते हैं। इसलिए उनके सुमापितों का स्पष्ट अत्यन्त मूल्य है। अधिकतर विद्वान् उनका समय ४०० ई० के लगभग मानते हैं।

१

रघुवंश-महाकाव्य

[रघुवंश-महाकाव्य महाकवि कालिदास का मुख्य महाकाव्य है ।]

४८२ हेन्त संस्रप्यते ह्यग्नौ विशुद्धिं स्मामिकापि वा ॥ (१।१०)

सोम की विशुद्धि अथवा मिलावट का पता अग्नि में ही लगता है।

४८३ क्रिया हि बस्तूपहिता प्रसीदति ॥ (३।२९)

उचित पान में प्रयुक्त क्रिया ही सफल होती है।

४८४ पदं हि सवत्र गुणमिदोपयते ॥ (३।६२)

गुण सवत्र अपना प्रभाव जमा देत हैं।

४८५ मिश्ररुचिर्हि शोकः ॥ (६।३०)

सोर्गों की रुचियाँ मिश्र-मिश्र हुआ करती हैं।

४८६ मरणं प्रकृतिं शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते क्षुधैः ।

क्षणमप्यवतिष्ठते दशसम्यदि जन्तुर्गन्तुं सामयानसी ॥ (८।८७)

मरण शरीरभारियों का स्वभाव है। बुद्धिमान् भोग जीवन का विकृति कहते हैं। इसलिए यदि कोई क्षण-भर के लिए भी जीवित रहता है तो उसे लाभवान् ही समझना चाहिए।

४८७ स्वशरीरशरीरिभावपि भूतसयोगविपर्ययी यथा ।

विष्णु किमिवानुतापयद्वा वाह्यविपर्ययविपरिचयम् ॥ (४८८)

जबकि शास्त्रों के अनुसार अपने शरीर और आत्मा के भी संयोग और वियोग होते हैं उन वधा में मपन से बाह्य विषय स्त्री-मित्रादि का वियोग विद्वान् का कस दुखी कर सकता है ?

२

कुमारसंभव-महाकाव्य

[कुमारसंभव-महाकाव्य महाकवि कालिदास का दूसरा महाकाव्य है। इसमें तारकासुर के वध के लिए कुमार कर्त्तिकेय के जन्म की कथा है।]

४८८ विकारहेतो सति विप्रियमे ।

ययो न चेत्तासि त एव धीरा ॥ (१५९)

गम में बिहार उत्पन्न करनेवाली वस्तु के पास हाने पर भी जिनके मन में विकार नहीं होता उन्हींको धीर कहना चाहिए।

४८९ प्रायेण सामप्यविषी गुणानां ।

परादमुत्ती पिदबसुज प्रवृत्ति ॥ (१२८)

किसी एक ही द्रव्य या व्यक्ति में समस्त गुण पाये जाय दग बात के अनुकूल विषय के गप्टा भगवान् की प्रवृत्ति नहीं है।

४९० क ईप्सितार्थस्मिरनिर्घयं मनः

पमरप निम्नामिमुज प्रतीपयत् ॥ (५५)

अभीष्ट पदार्थ के लिए स्मिर निरुपयवासे मन को धीर नीचे की ओर घुटनेवाली मनी आदि को कौन कर सकता है ?

४९१ शरीरमार्घं कसु धमसाधनम् ॥ (५१३३)

शरीर धर्म का मुख्य साधन है ।

४९२ न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥ (५१५४)

रत्न स्वयं किसीकी तलाश नहीं करता । उसीकी तलाश की जाती है ।

४९३ अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुक
द्विपक्षि मन्वाद्यचरित महात्मनाम् ॥ (५१७५)

मन्द-मति लोग महात्माओं के लोकात्तर और अचिन्तनीय हेतुवाले चरित से द्वेष किया करते हैं ।

४९४ प्रायः प्रत्ययमायस स्वयुणेपूतमादरः ॥ (६१२०)

बड़े लोगों का सम्मान प्रायः अपन गुणों में विद्यास उत्पन्न कर देता है ।

३

मेघवूत

[मेघवूत महाकवि कालिदास का सुप्रसिद्ध गीतिभाष्य है । इसमें अलका नगरी से निर्वासित यक्ष की ओर से अपनी विरहिणी पत्नी के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजने का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है ।]

४९५ याञ्छा मोघा वरमधिगुणे नायमे स्रग्धकामा ॥ (११६)

अधिक गुणवाले से याचना करके पर उसका असफल हो जाना भी अच्छा है । नीच मनुष्य से उसका सफल हो जाना भी अच्छा नहीं ।

४९६ रिक्तः सर्वो भवति हि सधु पूजता गौरवाय ॥ (११२०)

आकाश रिक्त (अर्थात् शून्य) होता है वह सधु (हृष्ट) होता है । पूजता गौरव के लिए होती है ।

४९७ आपन्नार्तिप्रशमनफलं तपसो हृद्युत्तमानाम् ॥ (११५३)

उत्तम पुरुषों की संपत्तियाँ आपत्ति-ग्रस्त लोगों व कष्टों को शान्त करने के लिए ही होती हैं ।

४९८ कस्यास्यर्त्तं मुक्तमुपनर्तं दुःखमेकान्ततो वा
नोधगच्छत्युपरि च वशा चप्तेमिच्छमेव ॥ (५१४६)

ऐसा कौन है जिसको नियत रूप से केवल मुक्त अथवा दुःख ही प्राप्त होता हो ? मनुष्य की दशा पहिल्य की नमि (=धरा) की तरह कम से नीचे और ऊपर जाती है ।

४

अभिज्ञानशाकुन्तल-नाटक

[महाकवि कालिदास का यह विश्व-अमिद्ध नाटक है ।]

४९९ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकुलीनाम् (१११७)

जिनकी आकृति मधुर होती है उनके लिए प्रत्येक साधन मण्डन अर्थात् अलङ्कार का काम देता है ।

५०० सतां हि सन्नेहपरेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्त-करणप्रवृत्तयः ॥ (१११९)

संदेहास्पद वस्तुओं में सत्युक्तियों के लिए उनके अन्त-करण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं ।

५०१ अर्घो हि कन्या परकीम एव ॥ (४१२२)

कन्या तो दूसरे की ही वस्तु होती है ।

५०२ ओत्सुख्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा ॥ (५१६)

प्रतिष्ठा या स्त्रेय पर उसकी प्राप्ति के लिए जो उत्सुखता होती है वह सब वहीं शान्त हो जाती है ।

५०३ अनुमति हि मूर्ध्ना पादपस्तीघ्रमुष्ण
क्षमयति परितप छायाया सञ्चितानाम् ॥ (५१७)

वृक्ष अपन सिर से ता तीव्र उष्णता का अनुभव करता है, पर अपने आश्रितों के ताप या छाया से दूर करता है। अर्थात् सत्पुरुष स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों के दुःखों का दूर करते हैं।

५०४ भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गम
मवाम्बुनिभूरयिरुम्बिनो घनाः ।
अनुद्धता सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एव परोपकारिणाम् ॥ (५११२)

फलों के आन पर वृक्ष नम्र हो जाते हैं। तब जल्दा से बादल नीचे सटक भातें हैं। सत्पुरुष समृद्धियों का पाकर अनुद्धत रहते हैं। परोपकार करने वालों का यही स्वभाव होता है।

५०५ छत्रमपि शिरस्थम्ब क्षिप्तां धुनोत्पहिशङ्कया ॥ (७।२४)
मन्त्र के मिर पर यदि माला भी डाली जाय तो वह उसे सर्प की शंका से गिरा देता है।

५

विक्रमोर्वशीय नाटिका

[महाकवि कालिदास की इस नाटिका म उर्वशी अप्सरा और महाराज पुरुरवस् के प्रेम की कथा है।]

५०६ यदेवोपगतं बुद्ध्यात्सुखं सत्प्रसवसरम् ।
निर्वाणाय सदृच्छाया सप्तस्य हि विशेषतः ॥ (३।२१)

जो सुख-दुःख के पश्चात् प्राप्त होता है वह साधारण सुख से अधिक सुखमय होता है। आ मनुष्य भूप से सतप्त है उसके लिए वृक्ष की छाया विषय रूप से सुख देनवासी होती है।

५०७ परस्परविरोधिन्प्योरेकसंभयदुर्लभम् ।

सगतं श्रीसरस्वत्योर्भूयाद्भुक्तये सताम् ॥ (५१२४)

साधारणतः परस्पर विराभ मे रहनवासी सखी और सरस्वती का एक स्थान में कठिनता से पाया जानेवाला मूल सत्पुरुषों को उत्पत्ति करने वाला है ।

५०८. सवस्तरतु बुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।

सर्वं कामानवाप्नोतु सब सर्वत्र तत्पतु ॥ (५१२५)

सब कोई कठिनताका का पार करे

सब कोई बस्याणों को देखे ।

सब कोई अपनी सत्कामनाओं को प्राप्त करे

सब कोई सबत्र आनन्द का उपभोग कर ।

५०९ छिन्नबन्धे मत्स्य पलायिते मिषिणो ।

धीवरो भवति धर्मो मे भविष्यति ॥

जाल के बन्धनों के टूट जान पर जब मछली निकल भागती है तब विघ्न हार धीवर कहता है— 'बला मुझ गुप्त होगा' ।

५१० सवय सत्वात्मानुमान वसितुं युक्तम् ।

सब स्थितिमें मैं मनुष्य को अपन अनुमान मे अपन वो उन स्थिति में रख कर, धनहार करना चाहिए ।

६

मासविकाग्निमित्र-नाटक

[महाकवि कालिदास के इस नाटक में मासविका और महाराज अग्निमित्र का प्रभावान है ।]

५११ पुराणमिदं न साधु सर्वं,

न चापि काव्य नवमिरपवयम् ।

सन्त परीक्ष्यान्यतरङ्गजसे

मूढं परप्रत्ययनेयबुद्धिं ॥ (११२)

कोई वस्तु पुरानी होने से ही अच्छी नहीं हो जाती

न कोई काव्य नया होने से ही निम्नीय हो जाता है ।

सत्पुरुष नय-पुरान की परीक्षा करके दोनों में से जा गण्युक्त होता है,

उसको ग्रहण करते हैं ,

मूढ़ की बुद्धि तो दूसरे के ज्ञान से ही सञ्चालित होती है ।

५१२ अर्थ सप्रसिदन्यं प्रभुरधिगस्तु सहायवानव ।

बुध्य तमसि न पश्यति बीषेन विना सञ्जसुरपि ॥ (११९)

जिसके सहायक है ऐसा मनुष्य ही विघ्न-बाधाओं से मुक्त किसी लक्ष्य

को पा सकता है । आँखोवाला मनुष्य भी दीपक के बिना अन्धकार में

किसी दृश्य पदार्थ का नहीं देख पाता ।

५१३ मन्त्रोऽप्यमन्त्रतामेति संसर्गेण बिपश्चित् ।

पञ्चुल्लिख फलस्यैव निरूप्यन्नाविस पयः ॥ (२१७)

विद्वान् के संसर्ग से मन्द-बुद्धि मनुष्य भी बुद्धिमान् हो जाता है । उसे

गंगा जल मरु को बाटनवाले निर्मली के फल के सपर्श से शुद्ध हो जाता है ।

दसवा अध्याय

इस अध्याय के तीन भागों में क्रमशः महाकवि भारवि माय और श्रीहर्ष के सुप्रसिद्ध काव्या से घुन हुए मुनापित रत्न दिये गए हैं। संस्कृत महाकाव्यों के सबसे महाकवियों में महाकवि कालिदास के बाद इनका ही स्थान माना जाता है। तीनों की ही अपनी-अपनी विश्वपताएं हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाएगा।

किरातार्जुनीय—महाकाव्य

[किरातार्जुनीय—महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवि (समय लगभग ५५० ई०) हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है 'भारवेरर्यगौत्वम्'। अर्थात् षोडश-दण्ड में विपुल अर्थ का प्रतिपादन ही इनकी प्रमुख विषयता है। यह राजनीति के दृष्टे भारी जाता है।]

५१४ ...महि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति गुणा हितयिण ॥ (११२)

हितपी लोग ऐसी प्रिय बात नहीं कहना चाहते हैं जो मिथ्या हो।

५१५ ननु वक्तुमिच्छन्ति स्पृहा

गुणगृह्या वचन विपश्चित ॥ (२१५)

विद्वान् लोग किसी वचन के विषय में यह नहीं देखते कि उसका कहन बाला बोल है। वे तो वक्तु गुण के परापाती लोग हैं।

५१६ निवसन्ति पराश्रमाभया

न विपारेण सम समुद्यम ॥ (२१६)

यहां पराश्रम है वहां समुद्योग रहती है। विवाद या अनुग्राहक का सामना नहीं रहती।

५१७. सहसा विबधोत म किंयात्मविवेक परमापवा पदम् ।

बुधते हि विमृश्यकारिणं गुणसुम्भा स्वयमेव सम्पद्य ॥ (३।३०)

किसी काम को बिना विचारे न करे,

अविवेक आपत्तियों का महान् कारण है ।

जो विचार-मूक काय करता है उसको

गुणों में ह्यूय अपत्तियाँ स्वयं सघन करती है ।

५१८. स्पृहणीयगुणर्महात्मभिश्चरिते वर्त्मनि यच्छता मनः ।

विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समः समुन्नते ॥ (२।३४)

स्पृहणीय गुणों से युक्त महात्मानों से चले हुए मार्ग में मन देनवालों

की दुर्भाग्य से उपस्थित अवनति भी समुन्नति में समान होती है । उसमें

उनका कोई अपराध नहीं होता ।

५१९. यशोऽधिगन्तु सुखलप्सया वा मनुष्यसस्यामस्तिर्बातितुं वा ।

निद्रमुक्तानामभियोगभावा समुत्सुकेवाङ्मुपति सिद्धिः ॥ (३।४०)

यश की प्राप्ति के लिए, सुख की इच्छा से अथवा माधारण मनुष्यों

की गणना को अतिक्रमण करने के लिए, आतुर न होकर, प्रयत्न करने वालों

के पास मानस और मनुष्य के साथ सफलता स्वयं उपस्थित हो जाती है ।

५२०. किमिवावसाहकरमात्मवताम् ॥

(६।१९)

मनस्वियों के लिए कोई भी स्थिति अशान्ति जनक नहीं होती व

किन्हीं भी अवस्था में नहीं घबड़ाते ।

५२१. प्रेम पश्यति भयाम्यपदेऽपि ॥

(९।७०)

प्रेम अस्थान में भी अनिष्ट की आशंका करता है ।

५२२. उपनतमवधीरयन्त्यभय्या ॥

६

(१०।५१)

अभाग मनुष्य प्राप्त वस्तु का अपमान करते हैं ।

५२३ शरदम्बुधरञ्छायागत्यर्थो यौवनम्रिय ।
भाषातरम्या विषया पर्यन्तपरित्यागिनः ॥ (१११२)

यौवन की शोभाएं शरद ऋतु के मय की छाया के समान चञ्चल होती हैं । इन्द्रिया व विषय केवल तत्काल रमणीय होते हैं और अन्त में कुछ बमबाल होते हैं ।

५२४ तदा रम्याप्यरम्याणि प्रियाः शल्यं तदासह ।
तदकाकी सवग्मुः सन्निप्टेम रहितो यदा ॥ (१११२८)

जब मनुष्य अपने प्रिय से वियुक्त होता है तब रमणीय पदार्थ अरमणीय हो जाते हैं प्यारे प्राण काँटे के समान असह्य हो जाते हैं और उस समय अघुओं के बीष में भी मनुष्य अपने को एकाकी अनुभव करता है ।

५२५ शीघ्रन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुराद्यः ।
जितेषु ननु लोकोऽप्येतेषु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥ (१११३२)

अपन ही शरीर में रहम वारे बधु आदि दुर्जय शत्रुओं का पहले जीतना चाहिए । उनके जीत लेने पर, एसा समझो कि मानो मारा संघार तुमने जीत लिया ।

५२६. तावन्नाभीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरं यशः ।
पुरुषस्तावदेवासीत् पावम्मानास्र हीयते ॥ (१११६१)

जबतक मनुष्य के मान की हानि नहीं होती सभी तब लक्ष्मी उममें निवास करती है सभी तब उमका यश स्थिर रहता है और सभी तब उसकी पुराणों में गणना होती है ।

५२७ प्रकृत्यमित्रा हि सतामसापहः ॥ (१११२१)
कुप्ट लोभ स्वभाव न ही सज्जनों के शत्रु होते हैं ।

२

शिशुपालवध-महाकाव्य

[इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ (समय लगभग ७०० ई०) हैं । उनके विषय में प्रसिद्ध है कि 'माघ सन्ति त्रयो गुणा' अर्थात् कालिदास की उपमा भारवि का अर्घ-गौरव और वण्डी का पदमाश्रित्य—ये तीनों गुण माघ में पाये जाते हैं ।]

५२८ ज्ञातसारोऽपि क्षत्वेकं सखिग्वे कार्यवस्तुनि ॥ (२।१२)

किसी काय की वस्तुस्थिति को जानन वाला अकेला मनुष्य भी उसके सम्बन्ध में अस्तिम निश्चय करने में संविग्ध ही रहता है ।

५२९ महीमांसं प्रकृस्या मितभाषिणः ॥ (२।१३)

बड़े छाग स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं ।

५३० सम्पत्ता सुत्पिरमम्यो भवति स्वल्पयापि यः ।

कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न यद्ययति तस्य ताम् ॥ (२।३२)

जो मनुष्य थोड़ी-सी संपत्ति को पाकर सन्तोष कर बैठता है उस सम्पत्ता के बव भी उसके सम्बन्ध में अपनेको कृतकृत्य मानकर उसकी संपत्ति को नहीं बढ़ाता ।

५३१ मा जीवन्म्य परावशाद्बुद्धदग्धोऽपि जीवति ॥ (२।४५)

जो मनुष्य शत्रु के अपमान से प्राप्त हुए दुःख से दग्ध होकर भी जीता है उसका जीवन बुधा है ।

५३२ सामानाधिकरण्यं हि तेऽस्तिमिरयो कृतः ? (२।६२)

प्रकाश और अन्धकार एक ही स्थान में कैसे रह सकते हैं ?

५३३ आरभस्तेऽल्पमेवाज्ञां कामं व्यप्रा भवन्ति च ।

महारम्भा कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः ॥ (२।७९)

मूख लोग छोटा कार्य मारम्भ करते ह और उन्हीसे अत्यन्त घबडा जाते ह (उसका पूरा नहीं कर सकते) । बुद्धिमान् लोग बड़ काय मारम्भ करते ह और व्याकुल नहीं होते (अर्थात् सफलता प्राप्त कर लेते ह) ।

५३४ उपायमास्मितस्यापि नश्यन्त्यर्था प्रमाद्यत ॥ (२।८०)

काम-सिद्धि के उपायों में लग हुए भी प्रमादी मनुष्य के काम नष्ट हो जाते ह ।

५३५ ममयावसमारम्भो निदान क्षयसम्पन्न ॥ (२।९४)

अपनी शक्ति का अतिप्रमण करके किया गया काम अत्यन्त हानि का आदिभारण होता ह ।

५३६ बृहत्सहाय कार्यान्तं क्षोभेयामपि गच्छति ॥ (२।१००)

छोट लोग भी बड़ा की सहायता से अपना कार्य सिद्ध कर भेते ह ।

५३७ क्षणे क्षणे यन्नभतामुपसि तदेव रूप रमणीयतायाः ॥ (४।१७)

क्षण-क्षण में किसी वस्तु को जो गभीरता अथवा अपूर्व सुन्दरता प्राप्त होती ह, यहा रमणीयता वा स्वरूप ह ।

५३८ अभिनिबिष्टबुद्धियु प्रजति व्यर्थरता सुभाषितम् ॥ (१५।४३)

बुद्धिप्रहस प्रस्त बुद्धिवाक्य मनुष्य के प्रति कही गई अच्छी बात व्यर्थ हो जाती ह ।

३

नैषधीयचरित-महाकाव्य

[इस महाकाव्य के रचयिता माहाकवि तथा दार्शनिक श्रीहर्ष (ममय नाम्नी) दत्तात्रेय २० वा उत्तराश्व) थे । इनके विषय में प्रसिद्ध ह—
“नैषध पद्मालिपयम्” अर्थात् दण्ड वा मालिनी इनकी प्रमुख विधा पता ह ।]

५३९ अपां हि तृप्ताय न वारिबारा स्वादु सुगन्धिः स्वयते तुवारा ॥३।९३

जल से तृप्त मनुष्य को स्वादु, सुगन्धयुक्त और ठंडी जल की धारा अच्छी नहीं लगती ।

५४० पित्तेन कूने रसने सितापि तिक्तायते ॥ (३।९४)

पित्त के कारण जिह्वा कं दूषित हो जान पर मिश्री भी कड़वी लगती है ।

५४१ आर्मव हि कुटिलेषु न नीति ॥ (५।१०)

कुटिल लोग के प्रति सरल व्यवहार करना अच्छी नीति नहीं है ।

५४२ मित च सारं च वचो हि वाग्मिता ॥ (९।८)

सक्षिप्त और सारयुक्त वचन ही अच्छ वक्ता का लक्षण है ।

ग्यारहवां अध्याय

इस अध्याय में, सात प्रकरणों में सस्कृत के कुछ सुप्रसिद्ध नाटकों (=रूपकों) से तथा सुप्रसिद्ध पद्य-शैलीक महाकावियों से कुछ सुन्दर उपायांगी मुभाषित दिये गए हैं।

१

मुच्छकटिक

[इस रूपक के लेखक राजा धूर्तराज कहे जाते हैं। इसका समय अनिश्चित है। कोई इसको कामिदास से पूर्व की रचना और कोई बाद की मानते हैं। इसमें वसन्तमेला और चारदत्त के परस्पर प्रेम की कथा है।]

५४३ गूण्यमपुषस्य गृहं चिरभूम्यं मारितं यस्य सम्मित्रम् ।

मूर्खस्य रिपुः शून्याः सर्वे शून्यं द्रिदस्य ॥ (१।८)

पुत्रहीन के लिए घर मूना होता है जिसका कोई सच्चा मित्र नहीं है वसन्त समय नितरां मूना होता है मूल के लिए दिवाण मूनी होती है और द्रिद के लिए सबकुछ सूना जाता है।

५४४ सुखं हि दुःखान्वनुभूय शाम्भते घनायकारेण्यय रोषवृणम् ।

मुक्तासुषो याति नरो द्रिदतां धृतं शरीरेण मृतं न जीवति ॥ (१।१०)

घोर अपकार में दीप-अधन की भाँति दुःख का अनभव करण ही गुण सम्पन्न लगता है। जो मनष्य गुण के अनुसार द्रिदता का प्राप्ति होता है वह वास्तव में मृत है जबकि शरीर में प्राण बिया हुआ वह जीता है।

५४५ दारिद्र्यान्मरणान्ना मरणं मम रोषते न दारिद्र्यम् ।

मत्पक्षेत्तं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥ (१।११)

वारिध्र और मरण की सुसुता में मुझ मरण ही अच्छा लगता है वारिध्र नहीं। क्योंकि मरण में अस्पन्देश होता है और वारिध्र में अनन्त दुःख।

५४६ वारिध्रपात्पुरुषस्य वाग्यवजनो वाग्ये न सन्तिष्ठते
सुस्निग्धा विमुक्षीभवन्ति सुहृद स्फारीभवस्थापद ।
सत्त्व ह्रासमुपति क्षीलशशिन कान्ति परिम्नायते
पार्य कर्म च यत्पररपि कृत तत्तस्य सम्मायते ॥ (१।३६)

वारिध्र के कारण बंधु-भा-धव साग अपन कहन में नहीं रहते स्नेह करनेवासे मित्र विमुख हो जाते हैं आपत्तिया बढ़ जाती है शक्ति कम हो जाती है क्षील-रूपी चन्द्रमा की धोमा म्कान हो जाती है और बूझरों द्वारा किया हुआ पाप-कर्म उसपर लगा दिया जाता है।

५४७ गुणः सत्त्वनुरागस्य कारभं न बसत्कारः ।
अनुराग (स्नहाकपण) का कारण गुण होता है बसत्कार नहीं।

५४८. साहसे भी प्रतिवसति ।
स्वामी या संपत्ति साहस न रहती है।

२

उत्तररामचरित

[यह नाटक कृष्ण-रस के उत्कृष्ट महाकवि भवभूति (समय-आठवीं श. ई० का पूर्वार्ध) की सुप्रसिद्ध कृति है।]

५४९ सतां सङ्गि सङ्ग कथमपि हि पुण्येन भवति । (२।१)

सत्पुरुषों का सत्पुरुषों के साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध पुण्य से ही होता है।

५५० प्रियप्राया वृत्तिविनयमधुरो वाचि नियमः

प्रकृत्वा वक्ष्याणी मतिरमघगीत परिषय ।

पुरो वा पञ्चद्व्या 'तदिवमभिपर्यासितरसं

रहस्यं साधूनामनुपदि विशुद्धं विजयते ॥ (२।२)

प्रेम-वहुत्र व्यवहार, विनय से मधुर वाणी का संयम,
स्वभाव से वक्ष्याण-तत्पर बुद्धि, अनिन्दित परिषय,
परिषय के पूर्व अथवा पदवात् एष ही रस में रहनवाला,
सात्पुरुषा का वह रहस्य निश्चय और विनाश विजय-शील होता है।

५५१ वज्रावपि कठोराणि मुद्राणि कुसुमारपि ।

सोकोत्तराणां चेत्तासि नो नृ विज्ञातुमर्हसि ॥ (२।३)

साक्षात्तर व्यक्तियों के वज्र व भी कठोर और फूल स भी मृदु वित्त को
बौन जान सकता है ?

५५२ न विधिबपि कुवाचः सीत्येदु प्याम्यपोहति ।

तत्तस्य किमपि इय्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ (२।४)

जा जिसका प्रियजन है वह उसका कोई अद्वितीय अमूर्त्य धन होता है।
बिना कुछ जिन्य ही वह सुखों में दुःखों को भगा नेता है।

५५३ अस्त-वरणतत्त्वस्य इम्परयोः स्नेहप्रयात् ।

मानन्दप्रत्यरेकोऽप्यगपत्यमिति शङ्कते ॥ (२।५)

पति दीर पत्नी दानां मे अस्त-वरणों की एव मानन्द-प्रतिपद अपर
(=सन्तान) के रूप में घापी जाती है क्योंकि उनमें दानां का स्नेह
केन्द्रित रहता है।

५५४ एको रसः बद्धा एव निमित्तमेवा

त्रिदशः पञ्चपुष्पगिवाश्रयते विवर्तन् ।

आपतद्बुद्बुतगन्धमयान् विकाराग

भङ्गो यथा सतिश्रम्य तु तरसगतम् ॥ (२।६)

जैसे एक ही जल भँवर बबूला और तरङ्ग रूपी विकारों को प्राप्त होता रहता है वास्तव में तो वह सब पानी ही है ऐसे ही एक ही कण रस निमित्तों के भव से भिन्न-भिन्न हाता हुआ पृथक्-पृथक् परिवर्तनों को प्राप्त हो जाता है ।

५५५ गुणां पूजास्थान,

गुणियु न च सिद्धं न च वयः ॥ (५११)

गुणियों का सम्मान गुणों के कारण ही हाता है स्त्री-पुरुष के भेद या वयस् (=उम्र) के कारण नहीं ।

५५६ श्रवयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदुप्तयो ।

सा योनिः सववैराणां सा हि लोकस्य निश्च्युतिः ॥ (५१२)

मदमत्त और अविमानी लोगों की वाणी को ऋषिजन राक्षसी वाणी कहते हैं । वह समस्त घरों की जननी होती है । संसार के लिए वह मरक के समान है ।

५५७ कामं कुम्भे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं

कीर्तिं घृते कुण्डलं या हिनस्ति ।

तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां

घेनुं धीराः सुनुतां वाचमाहुः ॥ (५१३)

सत्य-प्रिय वाणी को विद्वान् लोग ऐसी गी कहते हैं जो घमस्त मङ्गलों (=कल्याणों) की माता है । वह कामनाओं की पूति करती है अशुद्धि को दूर भगाती है कीर्ति का उत्पन्न करती है और पाप का नाश करती है ।

५५८ घृतिपतति पदार्थान्भारः कोऽपि हेतु

म एतसु बहिरुपासीन् प्रीतयः संभवन्ते ।

विकसति हि पतन्मस्योवय पुण्डरीकं

ब्रवति च हिमरश्मावुदगते घम्रकान्तः ॥ (६१२)

कोई अशांत भान्तरिक मारण पत्थरों को सम्यक् पर देता है
 प्रीतियों वाह्य कारणों पर आधित नहीं होती ।
 सूर्य के उदय होन पर कमल खिल जाता है,
 और चंद्रमा के निकलन पर चन्द्रबान्त मणि पसीजन लगती है ।

५५९ प्रियानागे कृस्न किस् जगहरण्यं हि भवति ॥ (६।३०)

प्रिय पत्नी के न रहने पर ममस्त संसार जंगल के समान हो जाता है ।

५६० स्नेहश्च निमित्तस्यप्यपेक्षश्चेति विप्रतिपिद्धमेतत् ।

स्नेह भी हा और वह निमित्त की अपेक्षा भी करनेवाला हा य दोनों
 बातें परस्पर विरुद्ध ह ।

३

सुद्वाराक्षस-नाटक

[यह नाटक महाकवि बिद्याग्रदत्त (समय अनिश्चित है) की रचना
 है । राजनीति प्रधान यह नाटक संस्कृत-भाषित में अपन प्रकार का अनूठा
 है । इसमें भाषनय की नीति द्वारा मन्दा के मन्त्री राजसूय को पशुगुप्त के
 पक्ष में लान की कथा है ।]

५६१ न पुत्रं प्राकृतमपि रिपुमन्मृतम् ।

छापारण शत्रु की भी अपेक्षा टीक नहीं होती ।

५६२ कीदृशस्तृणानामग्निमा सह विरोध ?

अग्नि के साथ तृणा का विरोध कमे जा सकता है ?

५६३ हिमवति हिम्योपशय शीघ्रं सप समाविष्ट ।

हिम्य औपशयों हिमवान् में हैं और भय मिर पर बड़ा है ।

५६४ परायत्त प्रीते कथमिव रस वेत्ति पुदय ?

पराधीन पुदय प्रीति के रस को कैसे जान सकता है ?

५६५ इह विरचयन् साध्वीं शिष्यं क्रियां न निवार्यते ।

स्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुदकुश ॥

जबतक शिष्य ठीक काम करता रहता है उसे उस काम से नहीं हटाया जाता । जब वह अज्ञान-वश मार्ग को छाड़ देता है तभी गुरु उसके लिए अंकुश-समान हा जाता है (अर्थात् उसे स-मार्ग में प्रवृत्त करता है) ।

४

दशकुमारचरित

[इसके रचयिता प्रसिद्ध गद्य-श्रेष्ठक दण्डी ह । अभिज्ञतर विद्वान् सप्तम पा० ई० के अन्त और अष्टम के प्रारम्भ में इनका समय मानते हैं । प्रकृत गद्य-ग्रन्थ में दस कुमारों की प्रेममय कथाओं का वर्णन है ।]

५६६ अस्मद्वृत्तसमाना विराजमाना सपत्

सद्विस्तस्तेव सहस्रवोदेति, नश्यति च ।

संपत्ति अस् के वृत्तवृत्ते के समान होती है । वह विद्युत् की भाँति एका एक उदय होती है और नष्ट हो जाती है ।

५६७ इह जगति हि न निरीहबेहिमं भिय संशयस्ते ।

इस संसार में जो यत्न नहीं करता उसको रुझनी नहीं मिलती ।

५६८ श्रेयांसि च सत्त्वान्यनस्तानां हस्ते नित्यसामिध्यानि ।

जो आसुरी नहीं हैं उन्हींके पास समस्त कल्याण सदा रहते हैं ।

वारहवा अध्याय

इस अध्याय में भी सात अंश हैं जिनमें क्रमशः (१) कथा सरिस्तागर, (२) पञ्चतन्त्र (३) हितोपदेश (४) नीतिसूक्त (५) वराह्यशतक (६) रश्मिमाला और (७) अमृतमन्त्र — इन ग्रन्थों से उपयोगी सुन्दर सुभाषित दिए गए हैं।

१

कथासरिस्तागर

[यह कश्मीर के कवि सोमदेव की रचना है। इनका समय प्यारहवीं श० ई० का उत्तरार्ध है। इसमें परम्परागत कहानियों का हृदयाकर्षक संस्कृत-पद्य में संग्रह है।]

५८२ अप्राप्य नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः ।

धीर और परिश्रमी व्यक्ति के लिए इस संसार में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है।

५८३ अङ्गुले स हि कम्पाण व्यसने यो न मुह्यति ।

वही कम्पाण को पाता है जो आपत्ति के आने पर मोह का नहीं प्राप्त होता।

५८४ एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति ।

दो व्यक्तियों के एक-चिन्ता बाँटे होने पर कोई वस्तु असाध्य नहीं होती।

५८५ कथमर्था हि तवस्य सन्तोऽकारणवाग्मबा ।

करणा से आर्द्र जिसबाँले मत्सुरप सबक अकारण बन्नु होते हैं।

५८६ कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुश्चनसङ्गति ।

यह बिरुकुल ठीक है कि दुर्जनों का सङ्ग ही व्यसन-रूपी वृक्ष का मूल है ।

५८७ त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि प्राणानपि न सत्यम् ।

उत्तम प्रकृति के मनुष्य प्राणों का भी त्याग कर देते हैं, पर सन्माग को नहीं छोड़ते ।

५८८ पञ्चमे हि नमसि क्षिप्तं क्षेत्रं पतति मूर्धनि ।

आकाश की ओर फेंका हुआ कीचड़ फेंकनवाले के सिर पर गिरता है ।

२

पञ्चसन्त्र

[यह ग्रन्थ रमणीय और उपदेशप्रद पक्षुपक्षि-कथाया द्वारा राज-नीति शिक्षा के लिए अतिप्रसिद्ध है । विष्णुधर्मा इसके लेखक कहे जाते हैं । यह लगभग ३०० ई० की रचना है ।]

५८९ म स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमाधरः ।

बुद्धिमान् का चाहिए कि वह थोड़ा के लिए अधिक का नाश न करे ।

५९० प्राकाश्य स्वगुणोबधेन गुणिनो गच्छन्ति किं जगता ।

गुणी अपन गुणों के प्रकाश से ही स्याति को पाते हैं जम से क्या होता है ।

५९१ पेशुन्यान्निघते स्महः ।

शुगली ने स्मह नष्ट हो जाता है ।

५९२ यस्य बुद्धिर्वस तस्य निर्वुद्धेस्तु कृतो बलम् ।

जिसके पास बुद्धि है वही बलवान् है निर्वुद्धि के पास बल कैसे हो सकता है ।

५९३ सेवाधर्मं परमगहनो योगिनामप्रगम्य ।

सेवारूपी धर्म अत्यन्त गहन है। योगियों के लिए भी वह कठिन है।

५९४ मृकुभा सस्मिमेन जन्यमानाम्यवधुप्यस्ति गिरेरपि स्वसानि ।

कोमल जल से रमक साते हुए पर्वत के स्वल भी जिस बात हैं।

५९५ वीथी बुद्धिमतो घाह ।

बुद्धिमान् के बाहू दीप्त होते हैं।

५९६ यद्भविष्यो विनश्यति ।

जो मानेवाली आपत्ति का पहले से प्रतीकार नहीं करखा वह नष्ट हो जाता है।

५९७ बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जय ।

बहुत बलहीनों का भी समवाय (=एक हो जाना) दुर्जय होता है।

५९८ मत्यादरं शङ्कनीम ।

अत्यधिक आदर होने पर शंका करनी चाहिए।

५९९ सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेककल्पता ।

बड़े लोग संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं।

६०० कः परः प्रियवादिनाम् ?

प्रियवादियों के लिए परया कौन है ?

६०१ नक्तं स्वस्यानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।

नाका अपना स्थान को पाकर गजन्द्र को भी खींच लेता है।

६०२ इमे कस्यास्ति सौहृदम् ?

दुर्बल के प्रति किसका सौहार्द होता है ?

६०३ आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

जो बात अपन प्रतिकूल हैं उन्हें दूसरों के प्रति आचरण न करे ।

६०४ मनागत यः कुक्षे स शोभते,

स शोभ्यते यो न करोत्यमागतम् ।

जो आनवासी अग्रिम परिस्थिति का पहले से ही प्रतीकार कर लेता है वह शोभित होता है । जो ऐसा नहीं करता वह क्षात्र की स्थिति को प्राप्त होता है ।

६०५ सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः ?

किस अपथ्य-सेवी को रोग नहीं सताते ?

६०६ सर्वमाशे समुत्पन्ने अपि त्यजति पण्डितः ।

सर्वमाश के उपस्थित होने पर पण्डित आश को छोड़ देता है ।

६०७ उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

जो उदारचरित हैं उनके लिए सारी पृथ्वी कुटुम्ब के समान है ।

६०८. यावृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तावृशी ।

जिसकी वसी भावना होती है उसका वसी ही सिद्धि मिलती है ।

३

हितोपदेश

[पञ्चतन्त्र के आधार पर १४ वीं श० ई० में लिखी गई नारायण पण्डित की यह रचना है ।]

६०९ उद्यमेन हि सिध्यन्ति कर्माणि न मनोरथैः ।

काम उद्यम से ही सिद्ध होते हैं मनोरथ-मात्र से नहीं ।

६१० ज्ञानं भारं धिया विना ।

आचरण के विना ज्ञान केवल भार होता है ।

४

नीतिशतक

[इसके रचयिता प्रतिष्ठ विद्वान् और लेखक भवृहरि ह । इनका समय आदि अनिश्चित है । फिर भी प्रायेण इनका समय ६५० ई० के लगभग माना जाता है । इनके सुभाषितों का सदा से बड़ा आवर रहा है ।]

६११ अथ सुखमाराम्यं सुखतरमाराम्यते विशेषतः ।

ज्ञानस्य बुद्धिबलं ब्रह्मापि न रञ्जयति ॥ (१)

अथ का संतोष सरलता से किया जा सकता है । विशेषतः का संतोष और भी अधिक सरलता से किया जाता है । जो थोड़े-से ज्ञान में अपनेका पण्डित समझता है ऐसे मनुष्य का संतोष या रञ्जन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता ।

६१२ यदा किञ्चित्प्रज्ञोऽहं द्विप इव मराम्य समभव

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभयवसिप्तं मन मनः ।

यदा किञ्चित्किञ्चित्बुद्धयुपगतसकाशावगतं

तदा मूर्खोऽस्मीति प्वर इव मर्खो मे व्यपगतः ॥ (८)

जब मैं थोड़ा जानता था तब मैं हाथी के समान मराम्य था । उस समय 'म सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार मेरा मन मगित रहता था । जब मैं विज्ञान में क्रमशः बाधा-थोड़ा ज्ञान पाया तब 'म मूर्ख हूँ' इस प्रतीति में मेरा मन प्वर के समान हट गया ।

६१३ विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपात दातमुल ॥ (१०)

विवेक-शून्य लोगों का पतन अमक शरों से होता है ।

६१४ येवा न विद्या न तपो न ज्ञान
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मृत्युलोके भुवि भारभृता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ (१३)

भिनके पास न विद्या है न तप है न ज्ञान है न शील है न गुण है और न धर्म है वे इस मृत्युलोक में पृथ्वी के भारभूत हैं और पशु होते हुए मनुष्य-रूप से विचरते हैं ।

६१५ किमु धनं विद्याभ्यवद्या यदि...
सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥ (१४)

अनिन्दनीय विद्या यदि है तो धनों से क्या ?
सुकविता यदि है तो राज्य से क्या ?

६१६ जाड्य पिपो हरति सिञ्चति वाचि सत्य
मानोमतिं बिशति पापमपाकरोति ।
चेत् प्रसादयति बिभु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिं कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ (१५)

बुद्धि जड़ता को हरती है वाणी में सत्य का मिश्रण करती है
सम्मान की वृद्धि करती है पाप को दूर करती है
चित्त को प्रसन्न करती है विशामों में कीर्ति फैलाती है
कहो सत्सङ्गति मनुष्यों के लिए क्या कुछ नहीं करती है ।

६१७ प्रारम्भ्यते न जसु विघ्नमयम नीचे
प्रारम्भ्य विघ्नविहता धिरमन्ति मध्या ।
विघ्न पुनः पुनरपि प्रतिहम्यमाना
प्रारम्भ्य सूक्ष्मजना न परित्यजन्ति ॥ (१६)

नीच लोग विघ्नों के भय से काम प्रारम्भ नहीं करते ।
मध्यम लोग प्रारम्भ करके विघ्नों के आन पर काम छोड़ देते हैं ।

बारबार विघ्नों से भायित होन पर भी
उत्तम भोग कार्य प्रारम्भ करबे नहीं छाडते ।

दान भोगो माशस्तित्रो गतयो भवन्ति विसस्य ।

यो न ब्रूवाति न मुह्यते सस्य सुतोया गतिर्भवति ॥ (४३)

दान भोग और नाश—भन की ये तीन गतियाँ हाती हैं । जो न देता
है न भोगता है उमबे घन की तीसरी गति (=नाश) हाती है ।

६१९ संपत्सु महतां चित्तं भवत्पुत्पलकोमलम् ।

भापत्सु च महाससशिसासंघातककशम् ॥ (६६)

महान् पुरखों का चित्त भवति की दशा में कमल के समान कमल
होता है, पर आपनियो के आन पर महान् पर्वत की शिलाओं के समूह के
समान बठिन हो जाता है ।

६२० पापान्निवारयति मामयते हिताय

गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।

भापद्गतं च न प्रहसति ब्रूवाति कासे

सन्मित्रसंलग्नामिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ (७३)

पाप से हटाता है हितकर कार्य में समाता है
गोपनीय का गुप्त रखता है गुण का प्रकट करता है
आपत्ति-ग्रस्त का साथ देता है समय पड़न पर सहामता करता है—
यह लक्षण मित्र का महत्वरूप जतलाते हैं ।

६२१ मनसि बधति काये पुण्यपौषपपूर्णा

स्त्रिभुवनमुपकारयन्निभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणुव्यवतीकृत्य निरयं

निब्रह्मदि विकसन्तः सन्ति सन्तः क्रियन्तः ॥ (७९)

मन बधन और काय में गुह्य-रूपी समूत से पूर्ण
तीना लोकों का व्यापार उपकारों से प्रमत्त करने हुए

दूसरों के छोटे-से-छोटे गुणों को सदा पवर्तों जसा बढ़ा करके
अपने हृदय में प्रसन्न होमवाले सत्पुरुष सत्सार में कितन हैं ?

६२२ भवस्वी कार्यार्षी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥ (८२)

बुद्ध निश्चय से मुक्त कार्यार्षी सुख और दुःख की परवा नहीं करता ।

६२३ निबन्तु नीतिमिपुणा यवि वा स्तुषन्तु

लक्ष्मीं समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा

न्याम्यत्पथं प्रविचलन्ति परं न धीराः ॥ (८४)

नीति में निपुण पुरुष चाहे निन्ता कर या प्रशंसा करे
लक्ष्मी अपनी इच्छा के अनुसार चाहे आय या चली जाय
आज ही मरण हो जाय या युगान्तर में हावे
धीर पुरुष न्याम्य पथ से एक पर भी ह्मर-उधर नहीं होते ।

६२४ का हानि ? समयभ्युतिः ॥ (१०३)

हानि क्या है ? समय का टाक देना ।

६२५ तेजस्विनः सुखमसूनपि सत्यजन्ति

सत्यव्रतध्वसनिनो न पुनः प्रतिलाम् ॥ (११०)

सत्य के व्रत में आसक्ति रखनवाले तेजस्वी पुरुष प्राणा को भी सुख
बूझ छोड़ देते हैं पर अपनी प्रतिज्ञा का कमी नहीं छोड़ते ।

५

वैराग्यशतक

[नीतिशतक के समान इसके रचयिता भी भट्टहरि ही हैं ।]

६२६. बोद्धारो मत्सरप्रस्ता प्रभवः स्मयद्रुपिताः ।

अबोधोपहृताश्चान्ये बीजमङ्गे सुभाषितम् ॥ (२)

जा बोझा हूँ वे ईर्ष्या से ग्रस्त हैं, प्रभु भोग (=मधिकारी या एतदर्थ दासी) गव से दूषित हैं। अन्य भोग अमान्य हैं। एसी परिस्थिति में सुभाषित (=काव्यादि की सुन्दर रचना) अपन खरीर में ही जीर्ण हो जाता है।

६२७ भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता
स्तपो न तप्त वयमेव तप्ता ।

कासो न यातो वयमेव याता-

स्तुष्ट्वा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥ (१२)

भोग (सांसारिक सुख के साधन) नहीं भोग गये किन्तु हम स्वयं भोग गये तप नहीं तपा गया प्रत्युत हम ही तप्त हागये। काम नहीं बीता प्रत्युत हम ही बीठ गये। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, प्रत्युत हम ही जीर्ण हो गये।

६२८ यस्मिन्निर्मुक्तमाक्रान्तं पलितरङ्गितं सिरः ।

गात्राणि शिथिलायन्ते तृण्यका तद्वगायते ॥ (१४)

अरियो मुक्त पर आ गई है सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं और अङ्ग शिथिल हो गये हैं। अर्थात् सब प्रकार से वृद्धत्व आ गया है। केवल एक तृष्णा तम्रण होनी आ रही है।

६२९ विवेकव्याकोश विवधति शमे, शाम्यति तृण-

परिव्यङ्गं दुग्धे प्रसरतितरां सा परिजति ।

जराजीर्णैश्चर्यं प्रसन्नगहनाक्षेपकृपण

स्तृणापात्रं यस्यां भवति मशतामप्यधिपति ॥ (१७)

विवेक के विकास से यम्य पित्त-शाम्ति के हो जान पर और तृष्णा के अत्युग्र प्रभाव के दान्त हो जान पर मनुष्य के हृदय में उस आनन्दमयी अवस्था का प्रसार होता है जिससे स्थिर जरा में जीर्ण एतदर्थ में ग्रस्त ज्ञान के महाम् भय से दीन भावना को अनभव करता हुआ दयापिपति इन्द्र भी स्तुष्ट करता है।

६३० वमं वा गेहं वा सद्यःशामुपशान्तकमनसाम् ॥ (६३)

बिनका मन शान्त और एकाग्र है उनके लिए घन और घर दोनों समान हैं ।

६३१ यावत्स्वस्थमिव शरीरमवय यावज्जरा दूरतो

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्सामो नाम्नुय ।

आत्मध्येयति तावदेव विदुषा काय प्रयत्नो महान्

संबोधे भवने तु कूपसनमं प्रत्युद्यम कीदृशः ॥ (८६)

जबतक यह शरीर रोग से रहित और स्वस्थ है जबतक बुढ़ापा दूर है जबतक इन्द्रियों की शक्ति कम नहीं हुई है जबतक जीवन चल रहा है तभी तक विद्वान् को आत्म-कल्याण के लिए महान् प्रयत्न कर लेना चाहिए । आग से घर के जलन पर कुर्बान सोवन का प्रयत्न क्या ?

६३२ भोग रोगभय.....विशे नृपासाद् भयम् ।

.....गुणे सत्तमयं काय हृस्तान्ताद्भयम् ॥ (११६)

भोग में रोग का भय हाता है

घन होन पर राजा का भय हाता है

गुण में वृष्ट पुरुष का भय होता है

शरीर में यमराज का भय होता है ।

६

रश्मिमासा

[प्रकृत 'सुभाषित-सप्तशती' के सम्पादन तथा संग्रह-कर्ता ही इसके रचयिता हैं । इस ग्रन्थ की रचना आशावाद अभी समुद्रव उदात्त भाव नामों की पुष्टि की दृष्टि से ही की गई है ।]

आशा सर्वोत्कृष्ट प्रकाश है

६३३ निराशायाः समं पाप मामबस्य न विद्यते ।
तां समूख समुत्साय ह्याशावाद्यपरो भव ॥ (१।१)

निराशावादिनो मन्वा मोहावर्त्तंश्च कुस्तरे ।
निमग्ना अवसोदन्ति पङ्क्तौ गावो यमावशाः ॥ (२।४)

आशा सर्वोत्तमं ज्योतिर्निराशा परमं तमम् । (१।३)

मनुष्य के लिए निराशा के समान दूसरा पाप नहीं है। इसलिए तुम्हें उस पाप-रूपिणी निराशा का समूख हटाकर आशावादी बनना चाहिए।

प्रगति की भावना से विहीन निराशावादी छाग मोह के दुस्तर संवर में पड़ हुए, दलदल में पड़ी घबस गीर्ओं के समान दुःख पाते हैं।

आशा सर्वोत्कृष्ट प्रकाश है। निराशा घोर अन्धकार है।

उदात्त चरित्र महान् पुरुष

६३४ महतामप दुष्टाणामन्तर्णय उपस्थिते ।

हृत्तानी कमलस्येव रोसा आपते द्रुमम् ॥

वातेरिता प्रकम्पन्ते यूषा एव, न पर्वताः ।

आपत्तिसमये बृत्तं दुष्टाणां महतां तथा ॥

तस्मादापत्तिकाले ये महान्तोऽन्तरबेक्षिणः ।

तिष्ठन्ति निदबला धैर्यमूर्खयो न विक्रवते ॥ (८।१।३)

जिस में जैसे स्वर्ण की परीक्षा हाती है, इसी प्रकार विघ्न या आपा के उपस्थित हान पर निदबल रूप में महान् और दुष्ट लोग की परीक्षा हाती है।

तब बायु या आंधी के चलन पर वृक्ष ही काँपने लगते हैं पर्वत नहीं। आपत्ति के आन पर दुष्ट और महान् लोगों की एनी ही दशा हाती है। अर्थात् आपत्ति के समय दुष्ट लोग ही पड़ते हैं महान् पुरुष अविचल ही रहते हैं।

इसलिए आपत्ति के समय जो अन्तरवेक्षी (विचारशील या आत्मपरीक्षक) महान् पुरुष होते हैं वे भय-मूर्ति-रूप से निस्चल ही रहते हैं और किसी प्रकार के विकार को नहीं प्राप्त होते।

मन ही सुख का कारण है

६३५ विषयानुपमुञ्च्य सुखप्राप्तिमिया मरे ।

सुखस्य कारण स्वान्तमित्येतद्व्याप्यताम् ॥

तमेव विषयं प्राप्य सुखबुद्धे ततो मुणाम् ।

मनोऽवस्थितिभेदेन जायते इति वृक्ष्यते ॥

यत एवाभियुक्तानां मतमेतन्मनीषिणाम् ।

आत्मायत्तं मनो यस्य स एव सुखमश्नुते ॥ (१३।१।३)

मनुष्य सुख प्राप्ति के विचार में विषयों का उपभोग करते हैं। उनको समझ देना चाहिए कि वास्तव में सुख का कारण मन ही है।

(मन ही सुख का कारण है।) इसीलिए ऐसा देखा जाता है कि एक ही विषय को पाकर मन की अवस्था में भव से मनुष्यों का सुख और दुःख हुआ करते हैं। अर्थात् मन की अवस्था के भव से एक ही वस्तु हमें कभी सुखद और कभी दुःखद हो जाती है।

इसीलिए विचारणीय विद्वानों का यह मत है कि वही मनुष्य सुख पाता है जिसने अपने मन को अधिकार में कर रखा है।

६३६ बुद्धिवाप्यनन्तप्रसारां भगवो गतिमात्मन ।

आश्चर्य मूढताबोधाद् बीजं हीनं च मय्यते ॥ (१६।१)

मनुष्य आत्मा की (अथवा अपनी) प्रगति या उन्नति के अनन्त प्रसार (=विस्तार) को देखकर भी आश्चर्य है अज्ञान के दाप के कारण अपने को बीज और हीन समझता है।

६३७ यवतीतिमतीतं तत संबिर्घं यदनागतम् ।

तस्माद् यत्प्राप्तकालं तन्मानवेन विधीयताम् ॥ (१९।१)

जा हो चुका है वह ता हा ही चुका है । जो आमवाला है वह सन्देह प्रस्त है । इसलिए मनुष्य को वही काम करना चाहिए जिसका सम्बन्ध बतमान स है ।

६३८ यत्कर्मकरणनाम्नासन्तोष सभते मर ।

वस्तुतस्तद्धनं मन्ये न धन धनमुष्यते ॥ (२६।१)

जिस काम के करने से मनुष्य की अन्तरात्मा का संताप होता है न वास्तविक धन उसीका मानता है । लौकिक धन का धन नहीं कहा जाता ।

६३९ निधानं सर्वरत्नानां हेतुः कस्याणसंपदाम् ।

सर्वस्या उन्नतेर्मूल महतां सङ्ग उच्यते ॥ (३८।१)

महान्पुरुषों का मग समस्त उत्कृष्ट अमूल्य पदार्थों का आश्रय कस्याण संपत्तियों का हेतु और सारी उन्नति का मूल कहा जाता है ।

६४० लोकेऽत्र जीवनमिदं परिवर्तनीयं

दृष्ट्वा विभावय सखे ! भुवसत्यमतत् ।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं

भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजलि' ॥ (४१।१)

संसार में यह जीवन परिवर्तन-शील है

यत् दखकर अवि मित्र !

इस ध्रुव सत्य का सदा ध्यान रखा कि—

‘रात्रि भीत जायगी

प्रातःकाण होगा

सूर्यदेव का उदय होगा

और कमला की पत्ति गिलकर हँसेगा’

अर्थात् आपत्ति के समय का अन्त अबस्य होगा और अच्छा समय लीगगा इसका विषयाम सबको रक्खना चाहिए ।

अमृतमन्थन

[पूर्वोक्त रश्मिमाला के समान यह रचना भी प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक की है। इसका विषय भी प्रायः उसीके समान है।]

६४१ सुरम्यं कुसुमं ब्रूत्वा यथा सर्वं प्रसीदति ।

प्रसन्नानपरान् पृथा तथा त्वं सुखमाप्नुया ॥ (८११)

सुन्दर फूल को देखकर जैसे सब कोई प्रसन्न होते हैं ऐसे ही दूसरों को प्रसन्न देखकर तुमको प्रसन्नता हानी चाहिए।

६४२ यथा हि लोकिनां स्वीयं धर्मं रक्षन्त्यतम्रिताः ।

चारिभ्यस्तथा रक्षा विधेयोत्कर्षमिच्छता ॥ (८१२)

जैसे सांसारिक लोग बड़ी भावधानी से अपना धर्म की रक्षा करते हैं उसी तरह, जो अपना उत्कर्ष चाहता है उसे चारिभ्य की रक्षा करनी चाहिए।

६४३ चारिभ्यं मरुवृक्षस्य सुगन्धिं कुसुमं शुभम् ।

आकर्ष्यन् तर्पयान् लोकानां रञ्जयन् महत् ॥ (८१३)

चारिभ्य मनुष्य-रूपी वृक्ष का सुन्दर सुगन्धित पुष्प है। सुन्दर सुगन्धित पुष्प के समान ही उदात्त चरित्र सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है और सबको प्रसन्नता प्रदान करता है।

६४४ जीवनेऽस्मिन् महात्मानं स्वान्तस्तोषो निगद्यते ।

स्वस्यान्तरात्मना सार्धमविरोधे तबिध्यते ॥ (१३१२)

इस जीवन में सबसे बड़ा साम अपनी अन्तरात्मा का गताप ही है। अन्तरात्मा के साथ मनुष्य के अविरोध से ही वह प्राप्त होता है।

महं शरणं ष्टु में गरजता है पर बरसता नहीं । वह बिना छात्र के ही वर्षा ऋतु में बरसता है । इसी प्रकार नीच समुप्य केवल कहता है बरता नहीं परन्तु साधु मालता नहीं केवल करता है ।

६५१ महो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तुणाय मन्यन्तेत ज्ञारेण नमस्यपि ॥

महापुरुषों के चरित्र विचित्र ही होते हैं । वे लक्ष्मी को तुम ने समान समझते हैं पर लक्ष्मी ने भार से नम भी जाते हैं ।

६५२ यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकस्म्यता ॥

जसा चित्त वसी वचन उस वचन वसी ही क्रिया । साधुओं के चित्त वचन और क्रिया में एकरूपता होती है ।

६५३ उपबर्तुं प्रिय यस्तु कस्त स्नेहमहृत्रिमम् ।
सख्यमानां स्वभावोऽयं केनेन्दु निशिरोद्धतः ॥

उपहार करना प्रिय बालका और स्वाभाविक स्नेह करना—यह सख्यमाना का स्वभाव है । चन्द्रमा को किमन दीठल किया है ? अर्थात् वह स्वभाव में ही दीठल है ।

६५४ प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मोपन्येन भूतेषु यं कुर्वन्ति साधवः ॥

जिस प्रकार हम सबको अपन प्राण प्रिय है उसी प्रकार अन्य प्राणियों का अपन प्राण प्यारे है । इसीलिए साधु पुरुष अपनी उपमा के आधार पर प्राणियों पर दया करते हैं ।

६५५ उदय सविता रक्तो रक्तदद्यास्तमये तथा ।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

सूर्य उदय के समय लाल होता है और अस्त के समय भी लाल होता है । इसी प्रकार महान् पुरुष संपत्ति में और विपत्ति में एक-रूप ही रहते हैं ।

६५६ भारोप्यते शिखा शीले यत्नेन महता यथा ।

निपात्यते क्षणनामस्तथास्मा गन्धोपयो ॥

जस किसी ऊँचे स्थान पर शिखा बड़ यत्न से चढ़ाई जाती है और नीचे क्षणभर में गिरा दी जाती है। उसे ही गुण और दोष के विषय में आत्मा की स्थिति है ।

६५७ वज्रस्यैव प्रयास्युच्चैर्नरः स्वरेव खेळितः ।

मयः कूपस्य कृतक ऊर्ष्वै प्रासादकारकः ॥

मनुष्य अपने ही कामों से नीचे चला जाता है और ऊपर चढ़ जाता है । हुए को खोदने वाला नीचे की ओर उतरता जाता है और प्रासाद का बनाने वाला ऊपर की ओर चढ़ता जाता है ।

६५८ आत्मायस्त गुणप्राप्ते नैर्गुण्यं वक्षनीयता ।

व्यायस्तपु वित्तपु पुतां का नाम वाच्यता ॥

गुणों का धारण करना मनुष्य के अपने हाथ में है । ऐसी अवस्था में मनुष्य का गुणों से रहित होना निज्जनीय है । वित्त के विषय में तो मनुष्यों के लिए कोई निन्दनीयता की बात नहीं है क्योंकि धन तो भाग्य के अधीन होता है ।

६५९ प्रत्यह प्रत्यवेक्षत नरश्चरितमात्मनः ।

किं नु मे पशुभिस्तुल्य किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

‘मुझमें कौन-सी बात पशुओं जसी है और कौन-सी सत्पुरुषों जसी’ मनुष्य का प्रतिदिन अपने चरित्र का इस प्रकार अन्तःसमीक्षण करना चाहिए ।

६६० यदि सति गुणा पुंसां विकसन्त्यत्र ते स्वयम् ।

न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते ॥

मनुष्यों में यदि गुण होते हैं तो उनका प्रकाश स्वयं हो जाता है । कस्तूरी की सुगंध को शपथ में मिट्ट नहीं किया जाता है ।

६६१ अद्यापि बुनिभारं स्तुतिकम्या वहति कीमारम् ।

सबन्धो न रोचते साऽस्तस्तस्यै न रोचन्ते ॥

स्तुति-रूपी क्या आज भी बुनिभारणीय कीमार (=कुंआरेपन) का भारण करती है। (इसका कारण यह है कि) सत्पुरुष तो उसको पसन्द नहीं करत और असत्पुरुष उसको अच्छ नहीं लगते।

६६२ गुणानवन्ति जन्तूनां न जाति केवलं बबचित् ।

स्फटिकं भाजन भग्नं काकिष्यापि न गृह्यते ॥

रोग जन्तुआ के गुणों का सम्मान करते ह केवल जाति का कहीं भी नहीं। टूटा हुआ स्फटिक का वर्तन कौड़ी के नाम भी नहीं लिया जाता।

६६३ कि कुत्सेनोपबिष्टेन शोभमेवात्र कारणम् ।

भवन्ति नितरां स्फोता सुप्तेने कष्टकिङ्गमाः ॥

कुत्स के कहन से क्या होता है ? इस संसार में दीस ही सफलता का मुख्य कारण है। अच्छ जत में (भी) बटरी के पीप अत्यन्त विस्तार से होते हैं।

६६४ कस्यापि कोऽप्यतिशयोक्तिः स तेन साक

ख्याति प्रयाति न हि सर्वविबस्तु सर्वे ।

कि केतकी फलति कि पततः सुपुष्प-

कि मागवत्स्यपि च पुष्पकपयिता ॥

किन्नीकी कोई बिशयता होती है उसीसे उसकी ख्याति साक में फल जाती है। कोई भी सर्वज्ञ भयबा सर्वगुण-सम्पन्न नहीं होता। क्या के बड़े पर फल लगता है ? क्या कटहर पर फूल आते हैं ? क्या पान की बस पर फूल और फल लगते हैं ?

६६५ जीवन्तु मे दानुगणाः सब

पेया प्रसादात्सुबिबलनोऽहम् ।

यदा यदा मे विहृति लभन्ते

तदा तदा मां प्रतिषाधयन्ति ॥

मरे वायुगण सदा जीवित रहें जिनकी कृपा से मैं विशेषतया बुद्धिमान् बन सका हूँ। वे जब-जब मरे दोष को पाते हैं तभी मुझे सावधान कर देते हैं।

६६६ जनापवादमात्रेण न जुगुप्सेत चात्मनि ।

आमीयास्त्वयमात्मानं यतो सोको गिरहकुश ॥

केवल दूसरों द्वारा अपनी निम्न सुनवर मनुष्य अपनका निन्दित न समझे। यह स्वयं अपन का जान क्योंकि लाक ता निरफुश है, जो चाहता है सो कह देता है।

६६७ विप्रावस्थिते ब्रह्मे पौण्ड्रैः फलमती गते ।

विप्रावयन्ति नात्मानं सत्त्वापात्रयिणो नरा ॥

दुर्भाग्य के उपस्थित होन पर और प्रयत्नों के विफल हो जान पर भय धीर उत्साह से सम्पन्न व्यक्ति अपन को दुस्ती नहीं करते।

६६८ चसन्तु गिरय काम पुगान्तपवनाहता ।

हृच्छ्रेऽपि न चस्त्येव धीराणां निश्चित मनः ॥

प्रलयकाल के पवन से ताड़ित होकर पवत भले ही अपने स्थान से हट जाए, पर धीर मनुष्यों का निश्चय घोर कष्ट के भा जान पर भी विप्रस्थित नहीं हाता।

६६९ अङ्गचक्रेण समुपा कुस्मा अलपि स्थली च पातालम् ।

वस्तीकश्च सुमेधः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

अपनी प्रतिज्ञा के पारन में पड़ बीर पुरुष ने लिए पृथ्वी आगन की वेदी के समान समुद्र एक नाली के समान पाताल समतल भूमि के समान, और सुमेध पर्वत बाँकी के समान हो आते हैं। अर्थात् उसके लिए बटिन से-कठिन काम अति सरल हो जात है।

६७० उद्योगिनं पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मी

बैवेन देयमिति कापुदया धरन्ति ।

बर्षं निहस्य क्रुद पौरुषमात्मशक्त्या

यत्ने कृते यच्च न सिध्यति कोऽत्र शेष ॥

लक्ष्मी उद्योगी पुरुष-सिंह के ही पास आती है

भाग्य म जो है वही मिलेगा' ऐसा कायर पुरुष कहते हैं ।

अतः भाग्य को छाड़कर अपनी शक्ति से पौरुष करा

मन करन पर भी यदि काय मिष्ट नहीं होता तो सुम्हारा क्या शेष है ?

६७१ उद्यातम्यं जामृतम्यं योवतम्यं भूतिकर्मसु ।

मविष्यतीत्येव मनः कृत्या सततमम्यम ॥

'मेरा काय अबश्य ही सिद्ध होगा' ऐसा दृढ़ निष्पत्त्य करके मनुष्य को भ्रातृस्य छोड़कर उठना चाहिए और आगना चाहिए और प्रसन्नता तथा आशावाद के साथ उन्नति के कामों में जुट जाना चाहिए ।

६७२ शरीरमिरपेक्षस्य बलस्य व्यवसायिनः ।

बुद्धिप्रारब्धकायस्य नास्ति किञ्चन दुष्करम् ॥

जो शरीर की परवा नहीं करता जो निपुण और व्यवसायी है जो बुद्धि प्रारब्ध काय प्रारम्भ करता है उसका लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

६७३ यो यमय प्रार्थयते यदर्थं घटतेऽपि यः ।

अवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छान्तो नियतेति ॥

जो जिस लक्ष्य का चाहता है और जिसके लिए प्रयत्न करता है उसका वह अवश्य पा जाता है यदि शान्त होकर उसका छाड़ नहीं देता है ।

६७४ नास्तीति प्राप्नुवन्त्ययं न वसोया न च मानिनः ।

न च सोऽनरवाद्भूता न च नश्यत्प्रतीक्षित ॥

भालसी लोग अपन इष्ट लक्ष्य को नहीं प्राप्त करते। इसी प्रकार जो ठरपोक हैं अभिमानी हैं साफ़प्रवाह से डरते हैं और सदा केवल प्रतीक्षा करनवाले हैं वे भी अपन लक्ष्य को नहीं पाते।

६७५ न सक्षममनाऽह्य नरो भक्षणि पश्यति ।

संशय पुनराह्य यदि जीपति पश्यति ॥

मध्य (=जासिम) में अपनको डाले बिना मनुष्य भलाइयों को नहीं देखता। संशय में अपन को डालकर यदि जीता है तो देखता है।

६७६ सकृत्कम्बुकपातेन पतत्यार्यः पतन्नपि ।

तथा पतति मूर्खस्तु मृत्पिण्डपतनं यथा ॥

आर्य पुरुष गिरते हुए भी गंदे के गिरने के समान एक बार गिरता है (अर्थात् गिरते ही तत्काल पुनः चढ़ जाता है)। मूर्ख तो मिट्टी के ढले के समान गिरता है (अर्थात् गिरते ही चूर चूर हो जाता है)।

६७७ अफलागि बुरन्तागि समम्ययफलागि च ।

अशक्यागि च वस्तूनि नारमेत विचक्षणः ॥

समसदार मनुष्य एस कामों को प्रारम्भ न करे जिनका कोई फल न हो जिनका अन्त भरा हो जिनके करन में व्यय और फल समान हों और जो असक्य हों।

६७८. धृतिः क्षमा दया शीर्षं काश्यं चानमिच्छुरा ।

मित्राणां चानमिच्छोः सप्तैताः समिधः भियः ॥

धृति क्षमा दया पवित्रता करुणा अकठोर भाषी और मित्रों के साथ दोह न करना—य सात श्री की समिध हैं (अर्थात् इन सात गुणों से मनुष्य की शोभा अथवा समृद्धि बढ़ती है)।

६७९ जयमः साहसं धैर्यं बुद्धिः क्षाप्तिः पराक्रमः ।

पञ्चेते मयि वर्तन्ते तत्र शेषः सहायकृत् ॥

उद्यम साहस धन बुद्धि शक्ति और पराक्रम—जिसमें ये छ गुण रहते हैं परमेश्वर उसकी सहायता करते हैं ।

६८० जलमभ्यासयोगेन शक्तानां कुरुते क्षयम् ।

ककशाणां मृदुस्पर्शं किमभ्यासात् साध्यते ॥

अभ्यास के सहयोग से कोमल-स्पर्शी जल कठोर पक्का बन जाय कर देता है । अभ्यास से किस वस्तु की सिद्धि नहीं होती ?

६८१ गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।

एक-के-बीछ-एक चलनवाले होते हैं । ये वास्तविकता को नहीं देखते ।

६८२ सर्वे यत्र विनेतारं सर्वे पण्डितमानिनः ।

सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् वृद्धमयसीवति ॥

जहाँ सब मता बनना चाहते हैं सब अपनों को पण्डित समझते हैं सब अपना-अपना महत्त्व चाहते हैं वह मनुष्य-समुदाय तप्त हो जाता है ।

६८३ लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परपेदनाम् ।

धन और उदरार्थ से संपन्न लोग प्रायः दूसरों की पीड़ा का अनुभव नहीं करते ।

६८४ तवेवास्व परं मित्रं यत्र सप्रामति इयम् ।

बुद्धे सुखं च दुःखं च प्रतिष्ठाप्येव दर्पणः ॥

निमी मनुष्य का परम मित्र यही है जिसके द्वारा पर, स्वयं में स्थिती वस्तु के प्रतिबिम्ब के समान वह अपने गुण और दुःख को उसमें मीमांसा कर देता है ।

६८५ इतिरुपात् क्रमशः पञ्चनि पर्वणि यथा हसतिनाथः ।

तत्सम्भजनमप्रो विपरीतानाथ्य विपरीता ॥

गन्ने के अग्रभाग से लेकर जैसे प्रत्येक पंथ (=टुकड़े) में क्रमशः रस में विशेषता होती जाती है वैसे ही सज्जनों की मित्रता क्रमशः बढ़ती है। जो सज्जन नहीं है उनकी मित्रता इससे विपरीत होती है।

६८६ अवगास्तुटितं प्रेम समीक्षसुं क ईश्वरं ।
सर्वं न याति स्फुटित साक्षालेपेन भोक्तव्यम् ॥

अपमान से फट हुए प्रेम को कौन जोड़ सकता है ? टूटा हुआ मोती खास के लेप से नहीं जुड़ता ।

६८७ अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद्वनम् ।
यच्च बाहुयसं भीरोर्ध्वर्ममेतत्प्रय भुवि ॥

अप्रतिभाशाली की विद्या सूम का घन और भीरु का बाहुयस—पृथ्वी पर ये दोनों व्यर्थ हैं ।

६८८ धनमस्तीति वाणिज्यं किञ्चिदस्तीति कर्षणम् ।
सेवा न किञ्चिदस्तीति भिक्षा भव च नैव च ॥

धन होन पर वाणिज्य करना चाहिए । बाबा धन हा सो कृषि करनी चाहिए । कुछ भी धन न होने पर सेवा करनी चाहिए । भिक्षा तो कभी भी न करनी चाहिए ।

६८९ इदमेव हि पाण्डित्यं चातुर्यमिदमेव हि ।
इदमेव सुबुद्धित्वमायाबल्यतप्ते व्ययः ॥

यही पाण्डित्य है यही चतुरता है यही बुद्धिमत्ता है कि मनुष्य अपनी आय से व्यय बहुत कम करे ।

६९० इतरतापशतानि यथेच्छया
वितर तानि सहै चतुरानन !
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं
गिरसि मा स्मिन् मा लिप्ता मा लिप्ता ॥

हे कतुरानन ! (ब्रह्माजी !) आप अपनी इच्छा के अनुसार अन्य सकुड़ों दुःखों का दें म उनका सह सँगा । परन्तु अरसिक जगत् के प्रति कविता का निवेदन करना मेरे भाव्य में न लिखिए बन्नी भी न लिखिए ।

६९१ कं काळं कानि मित्राणि को बेश को व्यपागमी ।

कवचाहं का घ मे दाक्षितरिति चिन्त्य मुहुर्मुहुः ॥

कसा समय है ? कौन-कौन मित्र हैं ? कसा देश है ? क्या आमदनी है ? क्या व्यय है ? मेरा क्या स्वप्न है ? और मेरी दाक्षि कितनी है ? मनुष्य को समय-समय पर इन बातों पर विचार करना चाहिए ।

६९२ यो यत्र कुशलः कार्ये सं तत्र विनियोजयेत् ।

जो जिस कार्य में कुशल है उसका उसी कार्य में लगाता चाहिए ।

६९३ भगरी मगरस्येव रथस्येव रथी सदा ।

स्वगरीरस्य भेषावो हृत्प्रेष्यवहितो भवेत् ॥

जैसे एक नागरिक नगर के कामों में भयवा एक रथी रथ की देख-भाल में सावधान रहता है, इसी प्रकार बुद्धिमान् को चाहिए कि यह अपन दारीर के हृत्प्रेषों में सावधान रहे ।

६९४ कातरा एव जल्पन्ति यद्भ्रातृषु तद्भ्रातृविष्यति ।

साहसहीन व्यक्ति ही कहते हैं कि जो भाव्य में है वही होगा ।

६९५ शास्त्राध्ययीत्यापि भयन्ति मूर्खा

यस्तु क्रियावान् पुरुषः स एव ।

मुचिन्तितं बीषपमासुराणां

न माममात्रण करोत्यरोगम् ।

शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते हैं । किन्तु जो शास्त्र के अनुसार आचरण करता है वही वास्तव में प्रगमनीय है । रोगियों के लिए अच्छी

ठरह सोचकर निश्चित की हुई औषध भी नाम लेने मात्र से नीरोग नहीं करती है ।

६९६ माघर्मश्चिरमुद्यमे ।

अघर्म से घिरफालीन समृद्धि नहीं प्राप्त होती ।

६९७ अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकारं पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

अठारहों पुराणों में व्यास के दो ही वचन मुख्य हैं—परोपकार सं पुण्य होता है और परपीडन से पाप ।

६९८. येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि बेहिन ।

सतोयं जनयेत्प्राप्तस्तबेबेश्वरपूजनम् ॥

जिस किसी प्रकार से जिस किसी प्राणी को विद्वान् सतोप दे सके—वास्तव में यही ईश्वर की पूजा है ।

६९९. परोपकाराय सतां विभूतयः ।

सत्पुरुषों की सारी विभूतियाँ (= एख्य आदि) परोपकार के लिए होती हैं ।

७०० सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमागमवेत् ॥

सब सुखी हों !

सब रोगरहित हों !

सब कष्टार्णों का प्राप्त हों !

कोई भी दुःखमागी न हो ।

सुभाषित-सूची

(अकारादि क्रम से)

अक्षैर्मां वीक्ष्य	११६	अनागतविधाम हु	२५७
अग्निबाहावपि विशिष्ट	३७७	अनाभूष्टा सीदत	१२४
अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता	१६५	अनारोग्यमनाय ध्यम्	३८८
अग्ने नय सुपथा राये	२०३	अनिघतकासा प्रवृत्तयो	५७९
अग्ने घृतपते घृत	३७	अनिर्व्वेधं धियो मूसम्	२७३
अयं स केवलम् मुद्वसते	४०२	अनिर्व्वेधं च वाक्यं हि	२७१
अङ्गववेदी घमुषा	६६९	अनृत्याम ध्रुवो नाश	६७१
अज्ञ सुज्ञमाराध्य	६११	अनुद्वेगं धियो मूसम्	४४४
अज्ञज्ञाद्यद्वापानद्वय	३२२	अनुद्वगकर वाक्य	३२९
अज्ञातस्वस्वरूपेण	३५०	अनुभवति हि मूर्ध्ना	५०३
अज्ञेन्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा	४२२	अनुवृत्तं पितु पुत्रो	७२
अज्ञोऽपि तज्ज्ञातामेति	४५४	अन्तःकरणतरुस्थ	५५३
अमृन्मदश्च महद्भूषश्च	४७८	अन्तस्तुल्योपसप्तानां	४५१
अत एवामिषुवतानां	६३५	अर्थं तम प्रविशन्ति	२०२
अतिरोपनदशसुष्मानप्यग्रे एव	५६९	अर्थं वै विज्ञः	१९१
अतान उपमं ब्रूया	३६३	अश्लेष्म हीरं सर्वं	१८४
अतानं वयमस्मि पण्डिता	३५८	अन्यच्छ्रेयोऽन्यव	२०८
अत्याहारं शङ्कुनीय	५९८	अन्यदेवाह्निविधया	२०२
अवीना स्याम	२१	अन्यस्य धितम्	९८
अवैशकाले महानम्	३३०	अपां हि सुप्ताय न वारि	५३९
अद्या हि तद् यद्यद्य	१७४	अपि वीर्यमावेयं	४३८
अद्या हि तद् यद् मृत	१७३	अपूर्वाज्ञादवापिन्द-	४४६
अङ्गिर्गात्राणि शृण्वन्ति	४१२	अप्यक्रामे मनुस्सेसु	३५९
अद्यापि पुनिवार	६६१	अप्यमसौ पमत्तसु	३५३
अद्यश्च कुर्व पण्डितो	४५८	अप्यस्तुताय पुरितो	३६४
अयमर्पेयते तावत्	४०७	अप्रगल्भस्य वा विद्या	३८७
अप्यापिता ये गुरु	२३७	अप्राप्य नाम नेहास्ति	५८२
अनागतं यः कुर्वते	६४०	अप्यवस्तरमृतम्	८९

कसिं दायानो जयति	१४५	गच्छन्ति न वृथा	२८८
कस्याणी दत्तं गामेय	२७७	गुणां ज्ञस्वमुरागस्य	५४७
कस्मिन् देयाय	१	गुणां पूजास्मानं गुणियु	५५५
कस्यात्मन्तं सुखमुपनतं	४९८	गुणां गीजस्वमायास्ति	३४३
कस्यापि कोऽप्यतिगयोऽस्ति	६६४	गुमानर्भन्ति जन्तूनां	६६०
कातरा एव जन्तुगति	६९४	गुरोरप्यवन्तिपत्स्य	२४४
कामं यत्ननवृक्षस्य	५८६	गोप्ते घय मुरापे च	२६९
कामं कुर्यात् पिप्रकुर्यत्यलक्ष्मीं	५५७		
का हानिं समयप्युति	६२४	चतुर्धामपि यथार्तां	४१६
किं कुलेनोपबिष्टेन	६६३	घरम् य मयु विन्दति	१४५
किमियं हि मयुराणां मण्डन	४९९	घसत्तु गिरयं चार्म	६६८
किमिवावसाहकरमारमवताम्	५२०	घारिभ्य मरवृक्षस्य	६४३
किमु धनविधानवद्या यदि	६१५	चिकित्सांसो अथेतर्म्	१११
कीदृशस्तुपानामग्निना	५६२	चित्तं दत्तं सुखाब्धं	३५४
कुर्यन्त्रवेह पार्माणि	१८	चिन्तननयने चिन्ता	४४९
कुलीनमकुलीनं या	२५०		
कृत्स्नो हि सोरो युद्धिमताम्	४२६	छिन्नवर्षे मास्ये पञ्चायिते	५०९
कृषी न ऊर्ध्वार्धं घरपाय	३१		
कृषी न ऊर्ध्वार्धं घरपाय	१४२	जनस्य गोपा भञ्जनिष्ट	१३१
कृपया कस्यहेतवः	३१७	जनापयाबमायम	६६६
कृश कस्यास्ति सीहृदम	६०२	जलमुद्बुद्धमाना	५६६
केवलाधो भवति	११९	जलमम्पासयोगन	६८०
कोपं न गच्छन्ति	२८०	ज्वाह्वं यियो हुरति	६१६
को वेद मनुष्यस्य	१८७	जानामि शोले मातीनां	२८५
क्रिया हि यस्तूपहिता	४८३	जायतस्तम्	१०२
क्रोधं प्राणहरं दानु	२९५	जिनाहमा सर्वाय	३७५
क्षममानन्दितामेति	४३४	जिह्वा ययचित्तं रति	४८१
क्षमं क्षमं यत्नवतामुपति	५३७	जिह्वायसौ बुद्धि-	३८४
क्षमा गुणां ह्यज्ञानताता	३०२	जीपन्ता बुद्ध्या वेहे	५२५
क्षोभं प्रमाता अपि नय	६४६	जीवनस्मिन्महास्त्राम	६४४
		जीवन्तु मे दानुगमा सबय	६६५
रयायननानुतापन	४२०	जीवन्तु शरदं दानं	३०
		जातसारोऽपि रात्वेक	५२८
गतानुगतिरो सोरो	६८१	जानं भारं क्रियां विना	६१०

सुभाषित-सूची

१७

जनवतापि च मात्सर्यम्
न्यथो भ्राता पिता

४२५ त्रिविधं मरणस्येव
२६७ त्वां विनो वृणतां

३२१
७८

तसा रिष्टं

११५ दम्भो र्धर्पोऽभिमानश्च

३२५

तन्मन्त्रबहिर्हितं

७१ शतव्यमिति यद्दानं

३२०

तत्कृष्णो ब्रह्म

८४ वान भोगो नागस्तिष्ठो

६१८

तत्त्वदधि सम्यक्त्व

३३५ शरिष्ठं सत्तु पुत्रस्य

३८१

तत्सर्वसुखरेष्यं

९ शरिष्ठात्पुरुषस्य बाधय

५४६

तस्य कर्तुं जगदहिंसीमं

३४८ शरिष्ठयान्मरणाद्वा

५४५

तसा रम्याप्सरस्याणि

५२४ शीर्षो बुद्धिमतो ब्राह्म

५९५

तद्विं क्षत्रम्

१८० कुतितं सुसितो यापि

२६६

तदेवागिम्

६ कुतम हि सदा सुखम्

२४२

तदेवास्य परं मित्रं

६८४ वृद्धमान भवेत्प्रोति

२७६

तद्वि समूर्धं यज्ञात्ता कनीयान्

१६७ बद्धवाप्यनन्तप्रसरां

६९६

तनुपा अग्नेऽसि

६५ वृद्ध्वा रूपे व्याकरोत्

४५

तन्न मन

११ देवद्विजमुहप्राश

३२९

तपसश्च महोप्रेण

४४० देव सवितः-----मां

५०

तपो हि परमं श्रेय

२९७ देवस्य पश्य काव्यम्

१३१

तप्यन्ते लोकात्तापम

४७० देवा देवरपन्तु

४७

तमव विषय प्राप्य

६३५ देश देश कलत्राणि

२९१

तस्मादपरिहार्येऽर्थे

३११ धौ शान्तिर्

८५

तस्मादापत्तिकांसे ये

६६४ द्वितीयवाम् हि धीर्नवान्

१८१

तस्मादेता सदा पूज्या भूषणा-

४०० द्वे कमणी मर कुबम्

३०३

तस्य व्रतानि

१०९ द्वौ कुवापिय मुप्यते

४३५

तस्य तपो बभूव

२०६ धनमस्तोति वाणिज्यं

६८८

तत्तस्य कपोऽयमिति

४५९ धर्म एव हतो हस्ति

४१४

तावन्नितेऽग्निर्गो न स्याद्

४७९ धर्मादर्थः प्रभवति

२५५

तावन्वाधीयते लक्ष्म्या

५२६ धर्मो गतिस्वभायोऽयम्

४२३

तस्मात्ताना भूति

३२५ धारणाद् धमम्

३५१

तस्मिन् सुखमसूनपि

६२५ धिगस्तु परवदताम्

२७५

ततोऽसि तेजो मयि

५७ धूम पूर्वतं

१२१

ह ते धीरसरा अशान्त-

१९५ धीर्ध

६७८

तन्पुतमसत्त्वा हि प्राणानपि

५८७ धीर्ध

१२१

यो धर्मस्कन्धा

२२२ धीर्ध

६७८

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा	६५४	भद्रारभि धेय-	१४४
प्रायः प्रत्ययमायते	४९४	भवस्ति मन्नास्तरब-	५०४
प्रायः प्राणमृता प्रेमाणम्	५७९	भविष्यं मानुसंभसे	४४८
प्रायेण सामप्रघविषौ	४८९	भिन्नवर्षिहि लोकाः	४८५
प्रारम्भते न तसु विघ्न	६१७	भूम्य जागरणम्	१२७
प्रियप्राया वृत्तिविनय	५५०	भूमा वै रायस्पोय-	१७५
प्रियानाशो हृस्त्वं किल	५५९	भोगा न भुक्ता वयमेव	६२७
प्रियाय प्रियवाग्भिन्	१२८	भोगे रोगमयं	६३२
प्रेम पश्यति भयायपवेऽपि	५२१		
		मज्जन्यविषयतः	११४
यन्धुरात्मात्मनस्तस्य	६२३	मतिवर्षणे कवीनां विश्वं	५८१
यसिभिर्मुक्तमाकाशं	६२८	मत्स्य एव मत्स्यं	१७१
यहुप्रज्ञा कृच्छ्रम्	२३८	मदेम दातृहिमाः	३३
यहुप्रज्ञा निर्घृतिम्	९६	मध्यमभयम्	१६३
यहुभाषिणो न यहुपाति	५७४	मनःप्रसादः सौम्यत्वं	३२९
यहनामप्यसाराणां	५९७	मनःप्रदपेव शक्ति-	३४९
यित्व यित्वेन हन्यताम्	३७३	मनसा वा इहं	१७०
युद्धी शरणमन्विष्य	३१६	मनसा वा इहं बाण-	१७९
युहस्तहायः कार्यान्ति	५३६	मनसा व यज्ञस्तायते	१५८
योद्धारो मत्सरप्रस्ता-	६२६	मनसि वयसि बाय	६२१
ब्रह्म व क्षत्र घ	१५४	मनस्वी कार्यायो	६२२
ब्रह्मपयम तपसा	४२	मनुष्या वा ऋषिपू-	२३९
ब्रह्मवारी ब्रह्म	३९	मन्त्रमूर्तं च विजयं	२८४
ब्रह्मभारो.....धमन	४०	मन्त्ररागे वायसिद्विद्	३७६
ब्रह्मणि तसु व क्षत्रं	१५५	मन्त्रोप्यपरायतामेति	५१३
ब्रह्म मूर्धसमं ज्योति-	१२५	मम पुत्रा-	६०
ब्राह्मणः समदुःख	४६४	मरणं प्रवृत्तिः शरीरिणां	४८६
ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं	४८०	महातामय दुःखायाम्	६३४
		महीपातः प्रहृष्टा	५९९
भद्रं पर्वोभिः शुश्रूषाम	१६	महोरस्य प्रवीतय-	७
भद्रं जीवन्तो जरणाम्	६९	मह्य नमन्ता-	६४
भद्रं मा अपि	१४	मा जीवन्त्यः परावता-	५३१
भद्रं भद्रं	१५	माता पुत्रियो	९७
भद्रावधि धेय-	१६५	माता भूमि-	१४०

मा त्वा परिपन्थिमो	५८	यत्र नायस्तु पूज्यस्ते	४००
मा नो निद्रा ईयत	११२	यत्रामखादन्न मोवाश्च	३५
मा भ	६२	यथा चित्तं तत्रा वाचो	६५२
मा म	१२२	यथा द्यौश्च	६३
मा भ्रता भ्रातर	७२	यथा न सर्वम्	३४
मासे मासे सहस्तेन	३६०	यथापि दधिरं पुष्पं	३५६
मह ब्रह्म निराकुर्या	२०४	यथा पुष्करपत्रम्	२८६
मिठ्ठादिठिं न सेवेय्य	३६५	यथा धामं समाधित्य	४०१
मितं च सारं च वचो हि	५४२	यथा धृतस्य संपुण्यितस्य	२३०
मित्रस्याह घणुषा	८१	यथा सूर्यश्च	६३
मिम्यापि तत्तया यथा	५७५	यथा हि स्त्रीरिका स्वोयं	६४२
मिनाति धिप चरिमा	९९	यवतीतमतीतं तत्	६३७
मुमूर्षुषा तु सर्वेषां	२६४	यवत्र पुद्गलो भवति	२४९
मुहं प्रकल्पित देवं	४३७	यववध्यवधात्पार्यं	४४२
मुहुता सस्मिन्नेन	५९४	यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं	६१२
येषामहं प्रथमा	१०	यदा धमबवाकाशां	२२९
		यदा न कुर्वते भाव	४७२
य आसुभरपवितयेन	२३७	यदि सन्ति गुणा पुंसां	६६०
य आवुणोत्यवितथ	३९१	यदिह जगति किञ्चिद्	३४७
य उ स्वयं वहते	१०५	यदु वा आत्मतन्मितममं	१९०
यं यं लोक मनसा	२१७	यदेव किञ्चानुधानोऽप्युहति	२४०
य सयमभुरां घते	३३९	यदेवोपगतं कुर्वतास्तुभं	५०६
यः सहस्पातकं	१४८	यद् गृहीतमविज्ञात	२३६
य सर्वं कृत्स्नो भग्यते	१८८	यद् कृत्स्नं यद् कुर्यात्	४२१
यः स्वपक्षं परित्यज्य	२८९	यद्भविष्यो विनश्यति	५९६
यजमानेऽप्यशिरसि	२००	यमेव तु धुवि विद्या नियत-	३९१
यजमानो य यज्ञ	१५६	यमेव विद्यां शुचिम्	२३७
यतो वा इमानि भूतानि	२२१	यशा विद्वत्स्य	५३
यत्कर्मकरभेनास्त	६३८	यशोऽपिगन्तुं सुसक्तिप्लया वा	५१९
यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्	४०६	यज्ञा ह भवति ----	१६२
यत्किञ्चित्ससारे	३३८	यज्ञं मूढनमो सोके	४६३
यत्कृत्वा न भवेद्	२६३	यस्तपस्वी भटो मुण्डो	३४०
यत्तु प्रत्युपकाराय	३३०	यस्तु विज्ञानवान्	५११
यत्र नव च यजमानवशो भवति	१६०	यस्तु सर्वाणि	२०१

यस्मात् त्रयोऽप्याभमिषो	४०१	रूपसामान्यार्थसामान्यं	१
यस्य कृत्स्नं न विघ्नन्ति	२९८		
यस्य बुद्धिबलं तस्य	५९२	रश्मिर्वन्तो न आगन्ति	१
यस्य विद्वान् हि बलवत्	४१५	रश्मिर्वन्त्रात्रापेयाहा	२
यस्यैवेह भूयिष्ठमर्घं भवति	१५१	श्लोका यत्र व्योतिष्य	
योऽद्य पश्यामि	८३	श्लोकेऽत्र जीवनमिव	६
याञ्छन्ता मोघा वरमयिषुषे	४९५		
यातयाम गतरस्तं	३२८	यस्त्रावपि कठोराणि	५१
यावृक्षो भावना यस्य	६०८	यदन प्रसादसदनं	६१
यावृक्षिन् भायि	२३	यनं वा योहं वा सद्बुद्धम्	६१
यावत्स्वस्वमिव क्षरीरम्	६३१	यशो हि यस्तेन्द्रियाणि	३१
यावद् ध्रियेत जठरं	४६८	यहति ह वै यज्जिह्व	११
युक्तियुक्तमुपादेयं	४३९	यार्त्सयमो हि	३८
येन केन प्रकारेण	६९८	याम्य मनसो हृसीयसो	१९
येन दौघघ्ना	१	याद्य न भासन्	१
ये पुण्ये ब्रह्म विदुस्	१४१	याद्य सत्यमज्ञोय	१
येषां न विद्या न तपो न बार्त	६१४	याध्यावाध्यं प्रकुपितो	२८
योगः कर्मसु कौशलम्	३१८	यातेरिताः प्रकम्पन्ते	६३
योगस्य कुर्व कर्माणि	३१५	यासांति जीर्णानि	३१
यो चागार समुच्चः कामयन्ते	१०६	विकारहेतो सति विक्षिप्यन्ते	४८
यो बालो मञ्जरी	३५७	विक्षन्तो वीर्यहीनो यः	२४
यो यत्र कृत्स्नः कार्ये	६९२	विज्ञानसारविष्यस्तु	२१
यो यमर्षं प्रार्थयते	६७३	विद्यां चाविद्यां च	२०
यो यावृक्षलेसमाधातु	४५६	विद्या ब्रह्मब्रमेत्याह	३९
यो वै भवति यः श्रेष्ठताम्	१५२	विद्या ह य	२३
यो य भूमा तत्सुखम्	२२३	विद्वान् पयः पुरस्ता	१०
यो य भूमा तवमृतम्	२२४	विनाशं बहवो बोवा जीवन्	२७
यो हि ब्रह्मा द्विपञ्चेष्ट	२४६	विवेकभ्रष्टाणां भवति	६१
		विवेकव्याकोणे विवर्धति	६२
रत्नत्रयमनासाद्य	३३४	विद्यास्त्वा सर्वा बाञ्छन्तु	७
रसो वै स	२१९	विद्या वै क्षत्रियो ब्रह्मणः	१८
रसो द्विर्नाभिमायते	२४३	विशि राजा प्रतिष्ठितः	७
राष्ट्राणि वै विशः	७६	विश्यं विद्यायुद्	९
रिक्तः सर्वो भवति हि सयुः	४९६	विश्वरामी सुमनसः	३

विश्वस्मा उग्र	९३	श्रेयान्स्वधर्मो विगुण	३३२
विश्वानि देव सवितर	१२	एव कायमद्य	३८६
विश्वाहा वयं	३६		
विश्वमावस्मिते देवे	६६७	पट बोधा पुष्येणेह	३०५
विषयानुपमनुजान	६३५		२
वित्तं शौचितुकामो व	३६१	स मोत प्रोतदध	१४७
वेरमनूष्याचार्योऽन्तेवासिमम्	२१८	स व गुरुर्मरि शृणाति	१६४
वेरस्त्यागश्च यत्तादृश	३९०	सं श्रुतेन गमेमहि	२९९
वेराहमेत पुष्यं	८	ससारयति कृत्यानि	६७६
व्यतिषन्नति परार्थानान्तर	५५८	सकृत्कन्मुफपातेन	७३
व्याजष्टे य पठति च	४५३	सं गच्छत्य सं वदध्व	१६६
वस्त्यध प्रयातपुष्पैर्	६५७	संग्रामो वै क्रूरम्	१३६
व्रतन बोधामाप्नोति	३८	सज्जासज्ज वज्रसी	५४९
		सतां सद्भिः सङ्ग कथमपि	५००
यं न सूर्य उदयका उदेतु	८६	सतां हि सन्वेहपदेयु वस्तुयु	१८२
य नो यात पवतां	८७	सत्यं वं वज्र	४८
यददम्बुमरञ्जया-	५२३	सत्यं च मे	९४
यददि न बर्बति गजसि	६५०	सत्यं तातान सूर्य	२१९
यदोरनिरपेक्षस्य	६७२	सत्यमेव जयते	२५३
यदोरमाद्यं ससु धर्मसाधनम्	४९१	सत्यमबध्वरो लोके	२३१
यास्त्रतोऽप्यलोऽज्ञो	३८७	सत्य परं परं सत्यम्	४०१
यास्त्राश्रय्योत्पापि	६९५	सत्य जयात्त्रिभ्यं	२११
शिरो वा एतद् यत्तस्य	१५३	सत्येन सम्यस्तापस	११
शुभाशुमान्या मार्गान्या	२३२	सत्यनोत्तमिता भूमि	१३
शुभ्यमपुत्रस्य गृहं	५४३	सदा गावः शुचयो	६०
शोको नाज्ञमते धैर्यं	२४८	संतापयन्ति कथमप्यभुजं	४०
शोचन्ति जामयो यत्र	४००	सम्पुष्टो भार्यया भर्ता	२६
शङ्कान् शमां विद्याम्	३९८	स भार सौम्य	४१
श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः	१४९	समा वा न प्रवेष्टव्या	१९
श्रद्धामयोऽयं पुण्ड्रो	३२७	स मनसा ध्यायद्	७
श्रोत्रं राष्ट्रम्	१९२	समानो व आकूति	७
श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां	४७१	समानो न म	५९
श्रेयोसि च सकलान्यनलसामां	५६८	संपत्ती च विपत्ती च	६१
थयान् इष्यमयाद्	३२१	संपत्सु महतां वित्तं	

सपत्न्या सुस्थिरमन्यो भवति
 सभाषितस्य साक्षीतिर
 समानाद् यद्वा ज्ञो नित्यम्
 सम्मन्त्रवापो वपुषः
 स...यापातप्यतोऽर्धम्
 सर्वं वा इवमति च प्रति च
 राव स्वसकस्पवशास्तधुर
 सत्यं सत्त्वात्मानुमानेन
 सवत्ता न कश्चन न स्पृशति
 सर्वनाशे समुत्पन्ने
 सर्वतरतु दुर्गाणि
 सवस्य वै गावः
 सर्वे भवन्तु सुखिनः
 सर्वे यत्र विनतारः
 सर्वेशमय बानात
 सर्वेषामेव शोचानाम्
 सर्वो वा एव जगत्पाप्मा
 सर्वो वा एवोऽजगत्पाप्मा
 सयिता...अपामीवा
 सहसा बिबधोत न श्रियाम
 सहृदयं साम्मानस्यम्
 सामानाधिकरण्यं हि
 सा मा सत्योक्तिः
 साहसे यो प्रतिबसति
 सुखं हि कुसाग्यनुभूय

५३० सुखदुःखयो ग धान्योऽस्ति
 ३१२ सुखमुपविद्यते परस्य
 ३९७ सुखं विप्रा
 ५८० सुरम्यं कुसुमं वृष्टवा
 २० सुवासा नं वृष्टव
 १६८ सुवीरासो यय
 ४४१ सेबाधर्म परमगहनो
 ५१० स्मिधो रत्नान्ययो विद्या
 ५७२ स्वागुरय भारहृर
 ६०६ स्मितधीर्मुनिष्यते
 ५०८ स्नेहश्च निमित्तसध्यपक्षधेति
 १६१ स्नेहानुबन्धो बभूना
 ७०० स्पृहणीयगुणमहारमिः
 ६८२ खलमपि शिरस्यय
 ४०९ स्वयं हि तीर्थानि पुनरिति
 ४११ स्वयमुपस्थितं नात्रमन्यत
 १३७ स्वशरीरशरीरिणावपि
 १३८ स्वे स्वे कर्मव्यभिरत
 ९० हस्तं हस्तेन सर्वं य
 ५१७ हिसय दुर्गतिद्वारं
 ७२ हिमवति विध्यैवमय
 ५३२ हिरण्यमेन पात्रम
 ४९ श्रुतावोप्यु
 ५४८ हेनः ससज्यते ह्यग्नौ
 ५४४

४७७
 ५७३
 ५
 ६४१
 १७७
 ६१
 ५९३
 ३९९
 २३५
 ३१९
 ५६०
 ४७३
 ५१८
 ५०५
 ४६१
 ३७२
 ४८७
 ३३१
 २३३
 ३५६
 ५६३
 १२९
 ४२७
 ४८२

विषय-निर्देशिका

- वशीति ३१२
 वानि १६५, २८२
 मन्त्रव्यवस्था अज्ञानो ११४, ४२२, ४५४
 ५३३ ६११-६१२
 अविमान (= अभिमान) १८५
 अयम ३५१ ४०७ ६९६
 सम्प्रदाय ४१७ ५९४
 अनामत-विधान २५७, ६०४
 अनाय २८६
 अनुववादी १७६ २५१
 अन्तरात्मा का सत्त्व ४०६
 अन्त ५०५
 अम १५०-१५१ १६७ १८४ १९०-
 १९१ २६२
 अपत्य ५५३
 अपमान (या अवमान या अवज्ञा)
 ५३१, ६८६
 अपराध २७०
 अमिनिविष्टशुद्धि (पुष्ट) ५३८
 अमित्राय (या भावना) का महत्त्व १९८
 अम्पा ६५६, ४५५, ५९४ ६८०
 अमृत २६-२७ ३५ ८९ २१४ २२४
 २२६
 अयं काम ४०८
 अयं शीव ४११
 अविद्या २०२ ४५२
 अविज्ञ २४६ ५१७, ६१३
 अक्षर से सत् को और ज्ञान को प्रायता
 २२६
 अक्षर (मयका अनृत) ४५ १७६,
- २५१, ३४०-३४२
 असाधु (पुष्ट) ५२७
 अहिंसा ८१-८४ ३३६-३३८ ३५२,
 ३६३ ३९५
 आकार २८७
 आचरण के बिना सुभावित वाणी व्यर्थ
 है ३५६
 आचरण के बिना शास्त्रज्ञान व्यर्थ है
 ४५३ ६१० ६९५
 आचार ४०५
 आचार्य ३९२ ४२६
 आत्मा का दोहान्त-आपण २१८
 आज का महत्त्व १७२, १७४ ३८६,
 ४५८
 आतिथ्य ११९ १३७-१३९, १५६,
 ४०२
 आत्म ज्ञान २१० २१२ २१४ २१७
 २२५, २२८ २२९ ३५०
 आत्म-निरीक्षक २१३ ६५९ ६६६
 आत्म-विश्वास (अथवा स्वावलम्बन)
 की भावना ५२-५६ ३२३ ४२४
 ४५७ ४७५, ४७७ ४८१ ६५६ ६५८
 मोरता और निर्ममता ५८-६४
 आत्म-शुद्धि ४१२
 आत्मस्वाभावा ३८५, ४२५ ४७६
 आत्मसंमान ३२३ ४०३
 आत्मव्यय ३७५
 आत्मा और धरोर (अथवा और रम)
 २११

आत्मा का निरूपण २०९, ३१०

आत्मा का स्वस्व ३४६-३४८

आत्मकत्व-दर्शन २०१ ३४७

आदर्श-जीवन ३१-३६, ४६८, ४७२

५०० ५१० ६०३ ६०७, ६४१

६४४ ६६५

आदर्श-प्राप्तना ९-१७

बुद्धि-विषयक ९-१०

शुभ संकल्पों के लिए ११

भद्र और सुचरित के लिए १२-१७

६९ १३५, १४४

सन्मार्ग से चलन के लिए २०३

अवीनता के लिए २१

उत्कृष्ट जीवन के लिए २५, २८-२९

अमृत २६-२७ ३५

दीर्घायु और स्वस्थ जीवन के लिए ३० ३३-३४, ६५-७१

व्रत-पालन के लिए ३७

सत्य-पासन के लिए ४६-४९

पवित्रता के लिए ५०-५१

ओजस्वी जीवन के लिए ५७

वीरता और निर्ममता के लिए ५८-६४

असत् से सत् की ओर जान के लिए २२६

तम से ज्योति की ओर जान के लिए २२६

मृत्यु से अमृत की ओर जाने के लिए २२६

आदर्श सामाजिक जीवन ७३-७५

आनुशस्य (=आमकता का समावर) २७८

आयु ९१ १ ८

आरोग्य ४२३ ५८०

आर्जव ५४१

आर्य ६७६

आर्यशील मनुष्य ३००

आज्ञावाद ६३३ ६४०

आसुरी सत् ३२५

आहार (के तीन प्रकार) ३२८

आहार-शुद्धि २२५

इन्द्रियों का प्रावस्थ ४६७, ५२५

इन्द्रिय-संयम १६, ३८९ ५२५

ईश्वर-पूजक ६९८

उत्तम (पुरुष अथवा महान् पुरुष अथवा महात्मा) ४९७ ५२९ ५८७

५९९ ६१७ ६१९ ६३४ ६४९ ६५१ ६५५

उत्साह (अथवा अनिवेद) २६५, २७३

उष्ण ५६७-५६८ ६०९ ६७३ ६७९

उद्योगी (मनुष्य) ६७० ६७२

उन्नति (उत्थान) की भावना २५-२९

३१ १२०, १३५, १४२-१४४ २१२, ३०५, ३६६, ३६८, ३७१, ४६२, ५३० ६७१ ६७३, ६७८-

६७९

उभयतो ममस्कार (=दोनों पक्षों के साथ रहना) १९५

ऋत १२३

ऋत की महिमा ४४ १०४, ११३

ऋत और सत्य की भावना ४४-४९

ओजस्वी जीवन ५७

औचित्य १०३

कन्या ५०१
 कस्मरस ५५४
 कर्तव्य-यासन १०५, ११२, १४६
 ३३१-३३२
 कर्म ४१७
 कर्म (अन्तरात्मा का संतोष करने वाला)
 ४०६
 कर्म (अनासक्त भाव से) ३१४-३१५,
 ४२७
 कर्म (निरर्थक) २६३
 कर्म (लोकविद्वत्) २५८
 'कर्म' (= कर्म) १७२-१७४ ३८६
 कर्म्याम करने वाला मनुष्य ३२४
 कर्म्याम कामना (सबकी) ५०८,
 ७००
 कवि ५८१
 कविता ६१५
 कवित्व ६९०
 कामना १०१ १९४, ३८९
 काय-सिद्धिकर गुण २७१, ४३१
 कुल ६६३
 कृत्तव्य २६९
 कृपण (=मीन) ३१७
 कृपि और द्यूत ११६, ६८८
 क्रिया और प्रतिक्रिया का सिद्धान्त १६८
 भ्रम २८०-२८१, २९५, ५६९
 लक्ष और ब्रह्म १५४-१५५, ४१८
 लक्ष (लक्ष्मि) और विश्व (वक्ष्य) १८०,
 १८३
 लम्बा ३०२
 लम्बावह दोष २९०
 लक्ष्म ४१५
 गान (का मनोविज्ञान) १८८
 गुण ३०८ ४८४ ४८९ ४९४ ५४७,

५५५, ५९० ६३२ ६५८ ६६०,
 ६६२
 गुण-दोष ६५६
 गुरु (कुमार्य-गामी का दासन) २४४
 गुरु-शिष्य का संबन्ध २१८, २३७ ३०१,
 ५६५
 गृहस्थाश्रम का महत्त्व ४०१
 गौ की महिमा १३२ १६१
 ग्रन्थी (=ग्रन्थ पढ़ने वाला) ४२२
 ग्रन्थमारी (=ग्रन्थ को स्मरण रखने
 वाला) ४२२
 वरित (सु-) १३
 वारिष (वारिष्य) २५० ६४२-६४३
 चित्त ९८ ३५४
 चिन्ता ४४०
 चौर्य ३४३
 जल (औषध-रूप) ८९
 जागरण (=सावधानता अप्रमाद) १०६,
 १२७ १३३ २१२ ३५३, ३५५,
 ३६६
 जाति ६६२
 जाया १०२, १८६
 जीवन (मादक्षजीवन) ३१-३६
 जीवन (आदर्श सामाजिक जीवन)
 ७३-७५
 जीवन (बोजस्वी) ५७
 जीवन (व्रत का) ३७-३८
 जीवन (स्वर्गीय पारिवारिक) ७२
 जीवन का महत्त्व २७४ २७७
 जीवन का रक्षण (उप्यता) १९३
 जीवन का सक्षय २५-२९
 जीवन की दामनिक दृष्टि १८-२४

जीवन की स्फूर्ति ९१

जीवन-संगीत ३०

जीवलोक के सुख ३०६-३०७

ज्ञातिमो का स्वभाव २८५

ज्ञान १२५ ४१२

जिज्ञासा का महत्त्व १२६

ज्ञान-वीरकर्म २०२, ४३३ ६१० ६४५

ज्ञान-बन्धु ४५३

ज्ञान-यम ३२१

ज्ञानसर्ववर्द्धिदम्भ ६११

ज्ञानी और अज्ञामी ९५, १११ ४२२

वृत्त्यज्ञान की (इसी जीवन में) आवश्यकता २०५

सप २९७ ४१२ ४२१ ४४० ४५६

सप (के तीन प्रकार) ३२९

तम से ज्योति की ओर जाने की प्रार्थना २२६

सह (या पादप) ५०३-५०४ ५०६

तक ही श्रमि है २३९-२४०

सीर्य ४६१, ४७४

सृष्ट्या ४५१ ६२७-६२८

दान ४०९-४१०

दान के तीन प्रकार ३३०

दाखिष ३८१, ५४३-५४६

दीक्षान्त-भाषण २१८

दीनों की उपेक्षा ४६४

दीर्घायुष्य ३० ३३ ६९-७१

दुष्ट का अन्त २२९

दुरात्मा (मनुष्य) ३९०

दुष्कृत ९२

दुर्जन-संगति ५८६

देव १९६ ४७४

देवताओं का अन्न २४९

देव २४५, ३७८ ३८०, ६७० ६९४

देव और पुरुषकार ४३५-४३७

देवी सप्त ३२५

दोष (अयावह) २९०

धूत और कृपि ११६

धन (वित्त) २०७ ६१८, ६३२ ६३८, ६८७-६८८

धर्म २५५-२५६ २९४, २९६, ३१३ ३३१-३३२, ३५१ ३९८-३९९, ४०८, ४१४ ४६६

धर्म के तीन स्कन्ध २२२

धीर (पुरुष, सत्त्ववान् पुरुष) ४८८, ५३३ ५८२-५८३, ६२३ ६६७-६६८

धैर्य (अथवा अनुज्ञेय) ४४४, ४५० ५३३

नशान विद्या में विश्वास (ज्योतिष) ३७४

नरक के तीन द्वार (काम, क्रोध, लोभ) ३२६

नियम-पालन ४२८

नीति (= सामान्य लोक अथवा व्यापक हारिक नीति साक-स्मिति तथा राजनीति) ३ ३-३०८, ३११ ३६७ ३७०-३८७ ३९८-३९९, ४२९ ४३१-६३२, ४३८-४३९ ४४२-४४५, ४५८-६६० ४६९, ४७८ ६८२-४८६, ४८९, ४९२-४९८ ५०३-५०५, ५०७ ५११ ५२३ ५२६-५३६ ५३८-५४२, ५४८-५४९ ५५५, ५६१-५६३,

५६७-५६८ ५७० ५७२-५७५,
५७८-५७९ ५८७-५८९ ५९१
५९२, ५९४-५९८ ६००-
६०२ ६०४ ६०६, ६११-
६१८ ६२२ ६३१-६३२ ६३७
६५६-६६० ६६२-६६४ ६६६
६७०-६८९ ६९१-६९२ ६९५
नवतुल्यको साम्यता १३ १०७ १११ १२३
पण्डित का स्तुति २९८ ३५७-३५८
३७०
पवित्रता २९३
परदारा २६१ २९०
परपक्षसेवी २८९
परमात्मा ३५०
परमात्मा का काव्य १३१
परमात्मा का ज्ञान २२९ ३५०
परमात्मा की अनन्त देन और रक्षा ८८
परमात्मा की महिमा ७-८
परमात्मा के नियम १०९
परमस्थता २७५
पराक्रम ५१६
परीक्षण की आवश्यकता ४३२ ५११
परोपकार ६९७-६९९
पवित्रता की भावना ५०-५१
पाप १४८ २०३ २६० ३६१ ६९७
पाप करने वाला २५९
पाप से मुक्ति ४२०
पाप से राहित्य २४
पारंगामी (मनुष्य) ३५९
पिता और पुत्र का सम्बन्ध १९९
पितृतुल्य २६७
पुण्यकर्म २३०
पृथिवी (माता) ९७ १४०

पशुन्य ५८१
पौरव्य (पुरुषकार, पुरुषार्थ) ३७८
४३५-४३७ ४४५, ६७०
प्रतिग्रह ४१९
प्रतिज्ञा-पालन २४३, २५४ २६८,
२९२ ६२५, ६६९
प्रतिष्ठा ५०२
प्रमाद (निद्रा स्वपन) ११२ १२७
३५३ ३७१, ५३४
प्रियजन (या प्रिया पत्नी) ५२४, ५५२,
५५९
प्रियवादी १२८ ६००
प्रीति २७६, ५५८ ५६४ ५७१
प्रेम (व्या स्नेह) ५२१ ५६० ५७६,
५९१ ६८६
बुद्धि ९ ३१६, ४१२ ५९२
मेधा १०
वद्विमान् ४२६ ५९५
ब्रह्मन् २०४ २१९-२२१ २२३-
२२४
ब्रह्म और क्षण १५४-१५५ ४१८
ब्रह्मचर्य ३९-४३ ३४४-३४५
ब्रह्म-ज्ञान ४०९
ब्रह्मविद्या २०६ २२९
ब्राह्मण का सञ्चा स्वस्म ३६९ ३९७
४६४ ४८०
भद्र (कल्याण) १२ १४-१७ ६९
१३५, १४४
भविष्य अथवा ध्व (=कल)मनिदिष्ट
है १७२-१७४
भारवहन (शक्ति से अधिक से हानि)
१४७ २६२

भावना ६०८
 भाषितात्मा पुरुष की पूजा ३६०
 भिक्षा ६८८
 भुख १५०
 भोजन-विषयक नियम ३८८
 आत्मा (सहोत्तर) २९१
 मत्स्यन्याय १७१
 मध्यम मार्ग का महत्त्व १६३
 मन ११ १४ १५८ १७० १८९
 १९७-१९८ २३३ ४३४ ४९०
 मन और वाक् १६० १७९
 मन ही सुख का कारण है ६३५
 मन-प्रसाध ३२ ३६
 मन-शुद्धि ३४० ४१२
 मनुष्य (आदर्श मनुष्य) ४४८ ४६५ ५९९
 मनुष्य (इच्छा छान वाला) ११९ ४०२
 मनुष्य (एक रहस्य है) १८७
 मनुष्य की स्वार्थमयी प्रवृत्ति ११५
 मनुष्य (भगवां करने वाला) ११०
 मनुष्य (बहुत कामनाओं वाला) १०१
 मनुष्य-स्वभाव ४३४ ४५७, ४६३
 ४७३ ४८६ ४९३ ४९६ ५०५,
 ५०९ ५२४ ५२६ ५३९-५४०
 ५७३ ५७६-५७७ ६०६, ६३६,
 ६६५ ६८३
 मन्त्र २८४ ३०१
 ममरक्षण ३७६
 मरण ४८६, ५४५
 माता-पिता २५३ ३९२
 मान ५२६
 मानव की उत्कृष्टता ५३-५४
 मानवता का प्रेम भयवा समावर ८१-
 ८२ २७८

मानवता में ब्रह्म के दर्शन १४१
 मानवीय कल्याण की भावना ८१-८
 ५०८ ७००
 मित्र (सखा) ११८ २६६ ५४३, ६८४
 मित्रता २७६ २८६ ६८५-६८
 मिथ्या-वृष्टि १६५
 मुनि ३१९
 मुमुर्षु २६४
 मूढ (=मूर्ख बालिश) २९९ ३१
 ३६४ ३८२ ३८७ ५०५, ५१
 ५४३ ६७६, ६९५
 मूल-तत्त्व का स्वस्व १-८ २१९-२३
 २२३-२२४
 सर्वदेवता उसी की विमूर्ति हैं ४
 परम देव का महिमा ७-८
 मृत्यु ३६२
 मृत्यु से अमृत की ओर जाने की प्रार्थना २२६
 मौलिक प्रश्न १
 यजमान पर यज्ञ और वेद की स्थिति निर्भर है १५६, १६० २ ०
 यज्ञ १५६-१६० १७८
 ज्ञानयज्ञ ३२१ ३६
 ब्रह्मयज्ञ यज्ञ ३२१
 यद्भविष्य (पुरुष) ५९६
 याज्ञा ४९५
 योग ३१८
 रत्नत्रय (=अनियों के अनुसार सम्म
 र्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्म
 चारित्र्य) ३३४-३३५
 रसनेन्द्रिय पर विजय ४७९

राजनीति ३७३ ३८३
राजनीतिक आदर्श ७६-८०

संस्कृत ६८१

छात्र-कल्याण-कामना ५०८ ७००

साक्षोत्तर (मनुष्य) ५५१

वचन (मुक्तिमुक्त) ४३९

वाक (उत्तम और दूष्ट की) ५५६

वाक और मन १६९ १७९

वाक (सत्य और प्रिय) ४०४

वाक (सूनुता) ५५७

वाक्पाठ्य ३७७

वाक्सयम ३०९ ३८४

वाक्माधुर्य ३९५-३९६

वाणिज्य ६८८

वासना की नदी ४३७

विद्या (सरस्वती श्रुत) १३० १३४,

३९१ ३९८-३९९ ४०९ ४१२

६१४-६१५, ६८७

विद्या और अविद्या २०२

विज्ञान का महत्त्व ३९३-३९४

विच्छेद (बाह्य विषयों से) ४८७

विद्वत् और क्षम १८० १८३

विद्वत् प्रेम ८१-८४

विश्व-शान्ति की भावना ८५-८७

विषाद २७२ ५१६

वीरता और निर्भयता की भावना ५७

-६४ १२१-१२२ १२४

वृद्ध (पुरुष) २९६ ३९४

वृद्धावस्था ६९ ९९

वेद के अर्थज्ञान की आवश्यकता २३४-

२३६

वर से वर शान्त नहीं होते ३५२

व्यवसायी ४२२ ५८२

व्रत का जीवन ३७-३८

वानु (रिपु) की अवस्था ५६१

वानु का प्रतीकार १२१

वारीर ४९१ ६३२

वारीरशुद्धि ४१२

शान्त (मनुष्य) ६२९-६३०

शास्त्र ४३८ ६९५

शील ६६३

शुभसंस्कार ११ २१७

शूर २८८ ४७६

शोक २४८ २८३ ३११

शौच (शुद्धि) ४११-४१२

श्रद्धा ३८ ४५ ४८ १४९ १५७ ३२७

श्रम २२-२३ १००

श्रम (शक्ति से अधिक) १४७ २६२

श्रम-संगीत १४५

श्री (अथवा समृद्धि रुक्मी) १७५

१९२ ३७९ ४०३ ४१७ ४४४

५१६-५१७ ५४८ ५६६-५६७

६७० ६७८

श्री और सरस्वती का संगम ५०७

श्रमस् और प्रेमस् २०८

श्रेष्ठता और सत्ता १५२

संघर्ष ६७५

संशयारमा मनुष्य ३२२

संस्कृत (शुभ) ११, १४

संस्कृत का महत्त्व १९७ ४४१

संप्राम (समुद्र) की कृष्णता १६६

संघटन (संघगठन) ७३-७५, १२४

सत्त्ववान् (पुरुष) २८०

सत्पुरुष (सज्जन) ४६१ ५०० ५०३-

भाबता ६०८
भावितात्मा पुरुष को पूजा ३६०
मिष्टा ६८८
मुष्ट १५०
मोजन-विषयक नियम ३८८
आठा (सहोदर) २९१

मस्त्यन्याय १७१
मभ्यम मार्म का महत्त्व १६३
मम ११ १४ १५८ १७०, १८९,
१९७-१९८ २३३ ४३४ ४९०
मन और वाक १६९, १७९
मन ही सुख का कारण है ६३५
मन-प्रसाद ३२ ३६
मन-शुद्धि ३४९ ४१२
मनुष्य (आदर्श मनुष्य) ४४८ ४६५, ५९९
मनुष्य (इकेला ज्ञान वाला) ११९ ४०२
मनुष्य (एक रहस्य है) १८७
मनुष्य की स्वार्थमयी प्रवृत्ति ११५
मनुष्य (झगड़ा करने वाला) ११०
मनुष्य (बहुत कामनाओं वाला) १०१
मनुष्य-स्वभाव ६३४ ६५७ ४६३
४७३ ४८६ ४९३ ४९६ ५०५
५०९, ५२४ ५२६ ५३९-५४०
५७३ ५७६-५७७ ६२६ ६३६,
६६५, ६८३
मन्त्र २८४, ३०१
मन्त्र-रक्षण ३७६
भरण ४८६ ५४५
माता-पिता २५३ ३९२
मान ५२६
मानव की उत्कृष्टता ५३-५४
मानवता का प्रेम अथवा समादर ८१-
८२ २७८

मानवता में प्रह्ला के दर्शन १४१
मानवीय कल्याण की भावना ८१-८४
५०८ ७००
मित्र (सखा) ११८ २६६ ५४३, ६२०
६८४
मित्रता २७६, २८६ ६८५-६८६
मिथ्या-श्रुति ३६५
मुनि ३१९
मुमूर्ख २६४
मूढ (=मूर्ख, बालिग) २९९ ३५७
३६४, ३८२, ३८७ ५०५, ५११,
५४३ ६७६, ६९५
मूल-तत्त्व का स्वरूप १-८, २१९ २२१
२२३-२२४
सब-वेवसाहसी की विभूति हैं ४-६
परम देव की महिमा ७-८
मृत्यु ३६२
मृत्यु से अमृत की ओर जाने की प्रार्थना
२२६
मौलिक प्रश्न १
यजमान पर यज्ञ और वेद की स्थिति
निर्भर है १५६ १६० २००
यज्ञ १५६-१६० १७८
ज्ञानयज्ञ ३२१ ३६०
इक्ष्वाक्य यज्ञ ३२१
यज्ञ-विषय (पुरुष) ५९६
याचना ४९५
योग ३१८

रत्नत्रय (=ब्रह्मियों के अनुसार सम्य-
दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्
चारित्र्य) ३३४-३३५
रत्नत्रय पर विजय ४७९

राजनीति ३७३ ३८३
राजनैतिक आदर्श ७६-८०

शोक ६८१
लोक-कल्याण-कामना ५०८ ७००
मोक्षोत्तर (मनुष्य) ५५१

वधन (युक्तियुक्त) ४३९
वाक (समस्त और दृष्ट की) ५५६
वाक और मन १६९ १७९
वाक (सत्य और प्रिय) ४०४
वाक (सूनुता) ५५७
वाक्याख्य ३७७
वाक्ययम ३०९ ३८४
वाक्यमाधुय ३९५-३९६
वाविज्य ६८८

वासना की मयी ४३७
विद्या (सरस्वती श्रुत) १३० १३४,
३९१ ३९८-३९९ ४०९ ४१२
६१४-६१५ ६८७

विद्या और अविद्या २०२
विद्वान् का महत्त्व ३९३-३९४
विद्वद् (वाह्य विषयों से) ४८७
विद्वत् और क्षत्र १८० १८३
विद्वत् प्रेम ८१-८४
विद्वत्-शान्ति की भावना ८५-८७

विपान् ७७२ ५१६
पीरता और निमयता की भावना ५७
-६४ १२१-१२२ १२४
बुद्ध (पुरुष) २९६, ३९४
बुद्धावस्था ६९ ९९
वेद के अर्थज्ञान की आवश्यकता २३४-
२३६
वेद से बर घात नहीं होते ३५२

व्यवसायी ४२२, ५८२
व्रत का जीवन ३७-३८

घनु (रिपु) की व्यवज्ञा ५६१
घनु का प्रतीकार १२१
शरीर ४९१ ६३२
शरीरसुद्धि ४१२
शान्त (मनुष्य) ६०९-६३०
शास्त्र ४३८ ६९५
शील ६६३
शुभसंकल्प ११ २१७
शूर २८८ ४७६
शोक २४८ २८३ ३११
शीघ्र (शुद्धि) ४११-४१२
श्रद्धा ३८ ४५ ४८ १४९ १५७ ३२७
श्रम २२-२३ १००
श्रम (क्षिति से अधिक) १४७ २६२
श्रम-संगीत १४५
श्री (अथवा समृद्धि लक्ष्मी) १७५
१९२ ३७९ ४०३ ४१७ ४४४
५१६-११७ ५४८ ५६६-५६७
६७० ६७८

श्री और सरस्वती का संगम ५०७
श्रयस् और प्रेयस् २०८
श्रुतता और सत्ता १५२

संघाय ६७५
संघायात्मा मनुष्य ३२२
संकल्प (शुभ) ११, १४
संकल्प का महत्त्व १९७ ४४१
संग्राम (संयुद्ध) की फूरता १६६
संगठन (संगठन) ७३-७५, १२४
सत्यवान् (पुरुष) २८०
सत्पुरुष (सज्जन) ४६१, ५०० ५०३-

५०४ ५११ ५८५, ५८७ ६०१
 ६४६ ६४८ ६५३ ६६१
 सत्य ३८ ४५-४९ ९४ ११७ १२९
 १४९ १६२ १८० १८५ २१५-
 २१६ २३१ २४१ २४३ २५२
 २९६ ३३९ ४१४-४१५
 सत्य और असत्य १३६
 सत्य-प्रिय ध्वज ४०४ ५१४
 सत्सङ्ग ५१३ ५४० ६१६ ६३
 सन्त पुण्य ४६१ ५८५, ६२१ ६४६
 सन्तान (अभिजित सन्तान म फल) ९६
 २३८
 समा २९६, ४१३
 समय का पालन ४३० ४४३, ४४७
 ५७९
 समय का महत्व ४६० ६२४
 सम्पद (दवी तथा आसुरी) ३२५
 सम्मान और अयमान ३९७
 सरस्वती १३० ५०७
 सर्वकल्याणकाममा ५०८ ७००
 सविता (रोगनाशक) ९०
 सहाय (=साथी) की आवश्यकता
 १८१ ५१२ ५२८ ५३६ ५८४ ५९७
 सामुजन ४७०-४७१ ४७४ ५५०
 ६४७ ६५० ६५२ ६५४
 साधु-स्वभाव ५०३
 शाम और वान २७९
 साहस ५४८
 सिद्धि २७१ ४३१ ५१९ ५८२,
 ५८४ ६०८-६०९, ६७२-६७४

सुख २२३, २४२ २५६, २९७, ५०६,
 ५४४ ६३५
 सुख-दुःख का कर्ता (आत्मा) ४२४ ४७७
 मुभाषित ३५६, ६२६
 मुवातस (अच्छ वस्त्रों का महत्व) १७७
 भूकृतियों का महत्व ३३३ ४४६
 भूमि रक्षिमयी (गन्दगी को नष्ट करने
 वाली) १६४
 मेवा ६८८
 सवाधम ५९३
 सौन्दर्य ४९९ ५३७
 मौहूद २७६ २८६
 स्तुति ६६१
 स्त्रियो का सम्मान ४००
 स्त्रियों की रक्षा ४१६
 स्त्री ३०
 स्त्री (पतिव्रता) २९३
 स्त्री (पति से रहित) २४७
 स्त्रीरत्न ३९८
 म्पितप्रज्ञ (मनुष्य) ३१९-३२०
 स्वर्गीय पारिवारिक जीवन ७२
 स्वाध्याय ३६८
 स्वास्थ्य ३० ३४ ६५-६८ ७१
 ४२३ ६०५, ६९३
 स्वास्थ्य में सहायक जल ८९
 स्वास्थ्य में सहायक सविता अथवा
 सूर्य-रक्षिमयी ९० १६४
 स्वास्थ्य में सहायक अग्नि १६५
 स्वास्थ्य में सहायक निद्रा ५८०
 हिता ३३६ ३३८

